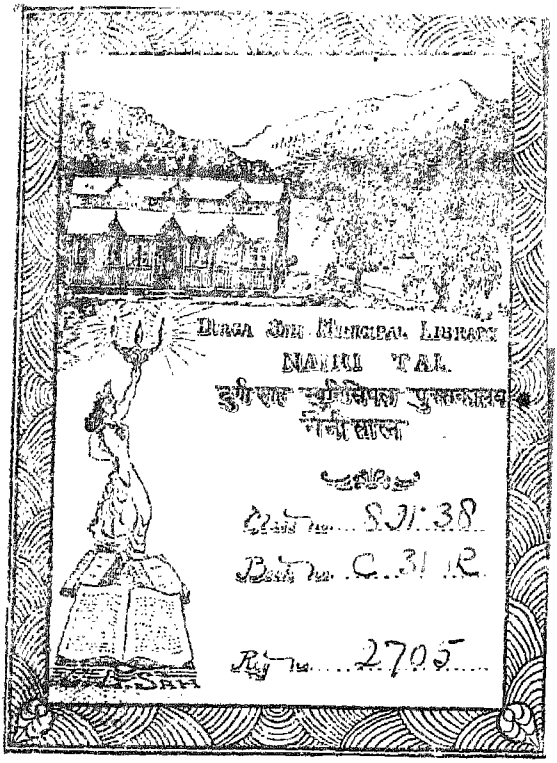

Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्यूनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No. 891.38
Book No. C 31 R
Reg. No. 2705
L. Sah

राजपूत बच्चे

लेखक—

आचार्य चतुरसेन

प्रकाशक—

गौतम बुक डिपो,

नई सड़क, देहली।

द्वितीय संस्करण] सं० २००६ [मूल्य १॥)

प्रकाशक—

गौतम बुक डिपो,

नई सड़क, दिल्ली।

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No. (विभाग) 891.38
Book No. (पुस्तक) C 31 R
Received On. Aug 1953

द्वितीय बार

अगस्त, १९४९

मुद्रक—

पं० विष्णुदत्त शास्त्री प्रबन्धक,

पी० बी० आई० प्रेस,

नई दिल्ली।

2705

कहानी-सूची

नं०	कहानी	पृष्ठ
१.	हठी हम्मीर	१
२.	मेड़ते का सरदार	१८
३.	विश्वासघात	३८
४.	जैसलमेर की राजकुमारी	५०
५.	कुम्भा की तलवार	५६
६.	वीर विजय	६६
७.	मन्दिर का रखवाला	८७
८.	दर्बार की रात	८६
९.	हल्दी घाटी में	९७
१०.	क़ैदी की रिहाई	११३
११.	रणबंका राठौर	१२७
१२.	शेरा भील	१४३

एक बात

सात सौ वर्षों तक अपने ही गर्म रक्त से अपने मुँह की लाली को बनाये रखकर, सदैव उद्ग्रीव रहने वाली राजपूताना की वीर-भूमि आज सो रही है। हल्दी घाटी में जब साँय-साँय करके हवा चलती है और वे पुराने वृक्ष,जब डालियाँ झुका झुका कर उन वीर आत्माओं को, जो सदा के लिये वहाँ विश्राम कर रही हैं, प्रणाम करते हैं तो देखने वालों के मन में एक वेदना का उदय होता है और मन में विचार होता है कि वे मृत्यु के व्यवसायी जीवित नर-नाहर, जिन्होंने अमर जीवन के सच्चे सिद्धान्तों को समझ लिया था, जो मरने से कभी न डरे, वृद्ध होने पर कभी न पुराने हुए, जो क्रोध और हास्य के अधिष्ठाता थे, दैन्य और रुदन जिनके पास न था, आज वे देश के धनी-धोरी कहाँ हैं ?

वह वीर मरुस्थली आज सो रही है, नगर,गाँव, जङ्गल,पहाड़ घाटियाँ सब सन्नाटा मारे सो रही हैं। सारी पृथ्वी के राष्ट्र जग रहे हैं, भारत की वीरस्थली सो रही है। उस देश के गाँव उजड़े पड़े हैं। वहाँ भूखे,नङ्गे,फटे चिथड़े पहिने हुये वीरों के वंश-धर अपनी धूल-भरी दाढ़ी को अपने अस्थिचर्मावशिष्ट शरीर पर सजाए जी रहे हैं। इनकी तलवारों को आज म्यान नसीब नहीं, वह गूदड़ों में लिपटी जङ्ग खा रही हैं, जो राजपूत इतिहास

में अमर कारनामे कर गये हैं, उन्हीं के बच्चे उसी वीर भूमि की गलियोंमें नङ्गे-भूखे,दीन-हीन झुण्ड के झुण्ड फिर रहे हैं। इनका कोई धुरी नहीं, रक्षक भी नहीं। सुन्दरी, स्वस्थ, मृदुभाषिणी, परिश्रमी,स्त्रियां, जो गृहलक्ष्मियों के सभी गुणों से भरपूर हैं, पति-प्राणा, प्रेममूर्ति, अविद्या और कुसंस्कारों से जकड़ी हुई गन्दे और भारी भारी घाघरों और गहनों में फँसी हुई उसी प्रकार जीवन काट रही हैं—जैसे किसी किसान की भैंस, जिसे दूध के लोभ से खूब दाना-चारा दिया जाता है और जो धुआँधार खा-पीकर बैठी-बैठी जुगाली किया करती है।

इन्हीं की माताओं और दादियों ने जौहर व्रत किये थे। राजपूताना भारत की भुजा थी। उसी भुजा में ये भारत की नैया के डाँड थे। उन्हीं के बल पर हिन्दुत्व जीवित रहा। प्रतापी मुग़ल साम्राज्य आज ध्वंस होगया पर वे वीरों के वंशधर आज भी अपने शिर पर राजमुकुट धारण किये हुए हैं। परन्तु उन वीरों के वंशधर केवल अपने पूर्वजों की छाया मात्र ही रह गये हैं।

उस गौरवपूर्ण अतीत को स्मरण करके हम आज रुदन करते हैं। परन्तु इससे क्या होगा? वर्तमान और भविष्य को संजीवन करने की शक्ति जिस देश में नहीं वही अतीत को लेकर रो सकता है।

परन्तु जातियों का रुदन भी क्या जातियों के जीवन की चरम-सीमा है? नहीं। जातियाँ चाहे रोयें चाहे मरें, परन्तु उन्हें हँसना और जीना चाहिए। ओ वीर भूमि! एक बार हँसो और सदा जिओ।

'राजपूत बच्चे' इतिहास नहीं, चरित्र भी नहीं, वह इतिहास और चरित्र की छाया हैं। उस छाया में हम अपने होनहार बच्चों को प्रतिविम्बित करके तत्कालीन जीवन की कुछ झलक दिखा सकते हैं। हमें आशा है कि इन कहानियों को पढ़कर राजपूती उत्सर्ग की स्मृति बिजली के धक्के की भाँति हमारे शरीर में वीरत्व का संचार करेगी।

संजीवन इन्स्टीट्यूट
दिल्ली
ता० २०। ७। ३७

श्री चतुरसेन वैद्य

दूसरा-संस्करण

बारह वर्ष बाद इस पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित होना एक दुःखद बात है। अनेक कारणों से यह पुस्तक दुष्प्राप्य रही, जब यह पुस्तक लिखी गई थी तब से अब महाकाल का पूरा चक्र घूम गया परन्तु मैं समझता हूँ, मेरे लाखों बच्चों के लिये राजपूत बच्चों की यह ओजभरी गाथाएँ अब भी जीवन-स्फूर्ति एवं उद्वेग देने में समर्थ हैं। इनमें वर्णित इतिहास-रस का चिरसत्य कभी भी पुराना न पड़ेगा। मुग़ल-प्रभावित भारत के राजपूतों की प्रतिक्रिया एक अंश तक सांस्कृतिक बात कही जा सकती है। मैं अपने अनगिनत प्यारे बच्चों को वीरत्व के ये रेखा-चित्र प्यार सहित प्रदान करता हूँ।

ज्ञानधाम
दिल्ली, शाहदरा
ता० १५। ३। ४६

चतुरसेन

हठी हम्मीर

१

देलवाड़े के भग्न और नगण्य दुर्ग में आठ-दस योद्धा एक साथ बैठे किसी महत्वपूर्ण विषय पर परामर्श कर रहे थे। इनमें एक को छोड़कर शेष सभी प्रौढ़ पुरुष थे। सभी की घनी काली डाढ़ी, और लाल २ आँखें, एवं गम्भीर कण्ठ-ध्वनि यह सूचित कर रही थीं कि ये प्रकृत युद्ध के व्यवसाई हैं।

इनमें केवल एक ही व्यक्ति युवक था। वह उज्ज्वल गौर वर्ण, बलिष्ठ एवं सुन्दर व्यक्ति था। अभी छोटी-छोटी मूछें उसके मुख पर सुशोभित हुई थीं।

यह युवक चित्तौड़ का प्रकृत अधिकारी महाराणा हम्मीर था। दिल्लीपति सुलतान के द्वारा चित्तौड़ विजय होकर शाही

अधिकार में चला गया था और उस पर सुल्तान की ओर से राव मालदेव क़िलेदार नियत होकर रहते थे।

महाराणा हम्मीर ने इस बीच में बारम्बार आक्रमण करके राव मालदेव और शाही सेना को अति त्रस्त कर रक्खा था। किसी क्षण उन्हें चैन न था। कब हम्मीर की तलवार सिर पर आ गज इसका कोई ठिकाना न था। आज उसी मालदेव ने हम्मीर के पास कन्या के विवाह का नारियल भेजा था। यह वीर-मण्डली इसी पर विचार कर रही थी।

एक सरदार ने कहा—

"अन्नदाता, इस सम्बन्ध में बिना भली भाँति सोचे विचारे पैर रखना उचित नहीं। राव मालदेव नीच प्रकृति का पुरुष है, फिर वह शत्रु है"।

दूसरे ने कहा—

"उसके पास यथेष्ट सेना भी है। और हम इस समय ५०० से अधिक वीर संग्रह कर ही नहीं सकते"।

तीसरे ने कहा—

"जहाँ तक हमें ज्ञान है, राव मालदेव की कोई कुमारी कन्या है ही नहीं। यह नारियल टीका निस्सन्देह छल प्रतीत होता है"।

सबके अन्त में सबकी बात सुन कर हम्मीर हँस पड़े। उन्होंने कहा—

"सरदारो, आप लोगों ने मुझे हठी तो प्रसिद्ध कर ही रक्खा

है, पर अब समझ लीजिये कि मैं राव मालदेव की कन्या व्याह कर अवश्य लाऊँगा और जैसा कि ठाकराँ का कहना है कि उसके कोई कन्या ही व्याह के योग्य नहीं है,—यदि यही बात सच हुई तो मैं स्वयं मालदेव से भाँवर लूँगा और फिर उस बूढ़े बकरे को वहीं हलाल भी करूँगा। आप लोग भय न करें। हम पांच सौ पचास हज़ार के लिये बहुत हैं"।

२

चित्तौड़ के दुर्ग पर रंग बिरंगी पताकाएँ फहरा रही थीं। दुर्गद्वार पर नौबत बज रही थी और स्वर्ण-कलश चढ़े हुये थे। सिंहद्वार से तनिक आगे बहुत-से घोड़े, हाथी, पालकी और सवार खड़े थे। सबसे आगे दुर्गस्वामी राव मालदेव अपने सरदारों के सहित सजधज कर खड़े थे। सड़कों पर अनेक मङ्गल-सूचक चिह्न बनाये हुये थे। बहुत से लोग पैदल और सवार जल्दी जल्दी प्रबन्ध करने के लिये दौड़ धूप कर रहे थे।

महाराणा हम्मीर उत्तम पीत परिधान पहने, एक अति चञ्चल घोड़े पर सवार थे। उनके कण्ठ में एक बड़ी-सी मोतियों की माला और सिर पर हीरे का एक जगमगाता हुआ तुर्रा था। उनके साथ श्वेत वस्त्र धारण किये, दो-दो तलवारें बराल में बाँधे,

साठ सरदार उन्हें घेरे धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। इनके पीछे पाँच सौ सजीले शूर अपनी लाल लाल आँखों से चारों तरफ घूरते हुए, भारी भारी नंगी तलवारों को अपनी लोह-मुष्टि में दबाये पंक्तिबद्ध आगे बढ़ रहे थे।

महाराणा प्रसन्नचित्त अपने सरदारों से धीरे धीरे बातें करते चल रहे थे। उनका सुन्दर घोड़ा अठखेलियाँ करता, नाचता, उछलता, बढ़ रहा था। प्रत्येक गति पर उसके पैर की झाँझनें बजतीं और उसके तुर्रे का हीरा की बिजली भाँति चमक उठता था।

लोग जहाँ तहाँ खड़े होकर भय और आश्चर्य से इस अद्भुत दूल्हा और अनोखी बारात को देख रहे थे।

एक बूढ़ा और दुर्बल ब्राह्मण मण्डली को चीर कर आगे बढ़ा और राजपथ पर उधर ही को जाने लगा जिधर से सवारी आ रही थी। वह पुरुष दुबला पतला और लम्बा था। वह एक राम-नामी ओढ़े हुये था और उसे इस बात की कुछ परवाह न थी कि लोग उसके इस साहस और मूर्खता के विषय में क्या कह रहे हैं। उसके एक हाथ में आचमनी का पात्र और दूसरे में दूर्वादल था। वह ऐसी धुन में बढ़ा जा रहा था कि उसके सफेद और लम्बे लम्बे केश उड़ २ कर अस्त-व्यस्त हो गये थे परन्तु इसका उसे कुछ ज्ञान ही न था।

ब्राह्मण ने निर्भय सवारी के सम्मुख जाकर दोनों हाथ उठाकर महाराणा को आशीर्वाद दिया। दूर्वादल से

आचमनी से गंगोदक ले घोड़े और महाराणा के मस्तक पर छिड़का। इसके बाद उसने चन्दन हाथ में लेकर कहा—

"अन्नदाता की जय हो, यह पवित्र तिलक मैं श्री मस्तक पर लगाऊँगा।"

महाराणा मुस्कुरा कर तनिक झुक गये, ब्राह्मण ने तिलक दिया और साथ ही कान में कहा—

"सावधान, आप मृत्यु के मुख में जारहे हैं, लौट जाइये।"

इतना कह और उत्तर की बिना ही प्रतीक्षा किये वह तेज़ी से हट कर बगल की भीड़ में घुस गया।

क्षण भर महाराणा खड़े रहे। उन्होंने भेदभरी दृष्टि से निकटवर्ती सरदारों की ओर देखा, सरदारों में काना-फूँसी होने लगी।

एक वृद्ध सरदार ने निकट झुक कर कहा—

"अन्नदाता! विपद सम्मुख है"

महाराणा हँस दिये। बोले—

"फिर भय क्या है! विपत हमारा मनोरंजन और मृत्यु हमारा व्यवसाय है। ठाकराँ, आज मातृभूमि के दर्शन तो नसीब हुये।" इतना कह कर उन्होंने घोड़ा बढ़ाया। सवारी धीरे धीरे फिर आगे बढ़ी।

सिंह-द्वार के निकट पहुँचते ही राव मालदेव और सरदारों ने आगे बढ़कर राणा का स्वागत किया, तथा राणा से घोड़े स

उतरने का अनुरोध किया। राणा ने राव का हाथ पकड़ कर कहा—

"आपका यथेष्ट सम्मान करना कुल-रीति के अनुसार मेरा कर्तव्य है, आप हमारे साथ आइये।"

संकेत पाते ही एक सरदार अपने घोड़े से कूद पड़ा, और रावजी को अनायास ही उठाकर उसने अपने घोड़े पर रख दिया। इसके बाद राणा ने राव की ओर देख कर कहा—

"विवाह-वेदी को छोड़ अन्यत्र भूमि पर पैर रखना हमारे कुल की रीति नहीं।"

राव जी को यह गुमान भी न था कि वे इस प्रकार एकाएक शत्रु-दल से घिर जावेंगे। वे कुछ कर भी न सके। चुपचाप घोड़े पर बैठ गये। सवारी आगे बढ़ी और किले के सिंह द्वार में घुस गई।

३

राव मालदेव ने इधर उधर देख कर कहा—"मेरी इच्छा है पहले सब सरदार काँसा आरोग लें। भोजन का सभी सरंजाम तैयार है।"

महाराणा के एक उमराव ने कहा—

"हमारे कुल की रीति के अनुसार प्रथम विवाह-कृत्य सम्पूर्ण होना चाहिये। बिना यह कार्य हुए हम अन्न-जल नहीं

ग्रहण कर सकते। आप कन्या को बुलवाइये। पुरोहित और सब सामग्री हमारे साथ है।"

इतना कह कर वे सभी महल के आँगन में घोड़ों से उतर पड़े, और राव को बीच में रख कर बैठ गए। द्वार को घेरकर पाँच सौ वीर नंगी तलवारें लिये खड़े हो गये।

राव साहब के प्राणों का संकट देख उनके सरदार घबरा गये। अभी एक ही क्षण में बुरा परिणाम हो सकता था। राव साहब का वहाँ से उठना असम्भव था। वे एक बार उठने भी लगे, इस पर एक सरदार ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—

"आप अब बिना कन्यादान दिये कहाँ जाते हैं। कन्या बुलवाइये।"

वास्तव में राव मालदेव की विवाह के योग्य कोई कन्या थी ही नहीं। पर इस समय उनके प्राणों पर संकट देख उनका संकेत पा उनकी एकमात्र विधवा कन्या को दो तीन सरदार मण्डप में ले आये। शीघ्र ही विवाह-कृत्य सम्पन्न हो गया। राव मालदेव चुपचाप सब कार्य देखते रहे।

इसके बाद वर-वधू को भीतर ले जाया गया, अब फिर राव साहेब उठने लगे तो सरदारों ने फिर उन्हें रोक कर कहा—

"हमारे कुल की रीति के अनुसार आज रात्रि भर आपको हमारे डेरों में रहना और हमारा ही आतिथ्य ग्रहण करना होगा।"

यह कह कर उन्होंने राव साहब को हाथों-हाथ उठा लिया और बाहर चले आये।

४

रात्रि अंधकार से परिपूर्ण थी, और राजपूताने क प्रसिद्ध पहाड़ी हवा तेज़ी से चल रही थी। उसकी पर्वतों से टकराने की ध्वनि मेघ-गर्जन की भाँति सुनाई दे रही थी।

परन्तु क़िले के एक सुसज्जित कमरे में कुछ और ही समाँ बँध रहा था। महाराणा एक बहुमूल्य कारचोबी के चँदोवे के नीचे बैठे थे। कमरे में बढ़िया ईरानी क़ालीन बिछे थे, उसकी दीवारें फूलों से सजाई गई थीं। नाचने वालियाँ छमाछम नाच रही थीं, और डाढ़नें उच्च स्वर से माण्ड गा रही थीं।

महाराना के निकट ही रत्न और ज़रीदार वस्त्रों में परिवेष्टित दुलहिन चुपचाप अधोमुख किये बैठी थी। उसका मुख-मण्डल विषाद से परिपूर्ण था, और वह ऐसा पीला पड़ रहा था कि मानों भय से उसका रक्त जम गया हो। वह चंचल नेत्रों से दूर पर्वतों पर टकराती हुई वायु की ध्वनि को सुनकर चमक उठती थी, मानो उस आनन्दलोक की अपेक्षा उसका मन भयानक रात्रि में ही अधिक लग रहा था।

यह उसकी सुहाग रात थी, स्वामी से उसका प्रथम मिलन था, उसके मन में लज्जा होनी स्वाभाविक थी परन्तु यह केवल लज्जा न थी, एक भयानक षड़यन्त्र की आशंका थी। वह आँखें चुरा चुरा कर कभी २ महाराणा का हास्योत्फुल्ल मुख और सुन्दर नेत्रों को भयभीत आँखों से देख लेती थी।

अनमनी वधू के प्रसन्न करने की पूरी चेष्टाएँ की जा रही थीं। महाराणा स्वयं उसकी अनुहार कर चुके थे। सहेलियाँ और गाने वालियाँ उसी को लक्ष्य कर व्यंग गा रही थीं। पर वह बालिका मानो किसी दूसरे ही गुरुत्वपूर्ण विषय पर विचार रही थी जो वास्तव में बहुत भयानक—बहुत भीषण था।

एक दासी ने विनय की—

"अन्नदाता, एक ब्राह्मण आपको आशीर्वाद देने आना चाहता है, वह राजकुल-पुरोहित है, और बड़ी देर से दर्शनों की हठ कर रहा है, वह एक बार महाराणा को आशीर्वाद दे भी चुका है।"

महाराणा ने कहा—

"ओह, वह बहुत उत्तम ब्राह्मण है, उसे अभी दक्षिणा नहीं मिली, यह लो और उसे दक्षिणा देकर बिदा करो। परन्तु अभी मुलाकात नहीं होगी।" यह कहकर उन्होंने गले की बहुमूल्य मोतियों की माला उतार कर दासी को दे दी।

वधू एक बार काँप उठी। अन्त में उसने एक दासी के कान में कहा,—"बस करो, अब गाना बजाना बंद करो।"

महाराणा ने वधू का अभिप्राय समझ कर गाने वालियों को संकेत से रोक दिया, वह तरंगित वातावरण एकबारगी ही स्तब्ध होगया।

दासियाँ महाराणा को मुजरा करके चली गईं। कक्ष में वधू और उसकी एक खास दासी रह गई। वह वधू को पृथक् ले जाकर उसका शृङ्गार करने और पुष्पालंकार पहनाने लगी।

वधू ने विरक्त होकर कहा—"रहने दे, मेरा जी अच्छा नहीं है, बस अब अधिक शृङ्गार की आवश्यकता नहीं।"

"बाईजी राज, आज ही तो शृङ्गार का दिन है, मैं पूरा इनाम लूँगी।" दासी ने हँस कर कहा।

"तू यह सभी अलंकार ले जा, पर जल्दी जा।"

सखी हँसी और झटपट अपना असम्भवित इनाम ले बाहर होगई। वधू अस्वाभाविक तेजी से द्वार तक उसके पीछे दौड़ी।

परंतु महाराणा ने लपक कर उसे पकड़ लिया और कहा---"प्रिये, अब कहाँ भागती हो?"

"एक क्षण भर अवकाश दीजिये महाराज"---वधू ने उनके बाहुपाश से छूटने की चेष्टा करते हुए कहा।

महाराणा ने हँस कर उसे और भी कसकर पकड़ लिया और कहा---

"नहीं प्रिये, एक क्षण भी नहीं, एक क्षण का एक कण भी नहीं। अब तुम मेरी हो।"

"आह! स्वामिन्, मैं उस दरवाजे को अच्छी तरह बंद कर दूँ।"

"वह ठीक बन्द है! अब तुम्हारी कोई सखी यहाँ न आवेगी।"

वधू क्षण भर स्तब्ध रही। महाराणा ने मधुर स्वर से कहा—

"क्यों प्रिये, अब यह घूँघट कैसा?"

वधू काँप रही थी। उसने धीरे से कहा—

"मैं बहुत भयभीत हूँ"।

"प्रिये, भय क्या है? जब तक यह सेवक यहाँ उपस्थित है"—

"आप को उस ब्राह्मण का सन्देश सुनना चाहिये था, वह अवश्य कोई भयानक संवाद लाया था।"

महाराणा जोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा—"ओह, तुम भी उसी के समान भोली हो, मैं उसका संदेश सुन चुका हूँ"।

"परन्तु मैं बहुत भयभीत हूँ महाराज। हैं!! यह शब्द कैसा हुआ? सुनो, सुनो"।

"कुछ नहीं है प्रिये, तुम व्यर्थ ही शंकित न हो"।

वधू ने इस बार स्थिर वाणी से कहा—"ठहरिये, महाराणा, आपको धोखा दिया गया है"?

महाराणा ने हँस कर कहा—

"कैसा धोखा"?

2705

"मैं विधवा हूँ"।

राणा पर वज्र गिरा। वे मेघ गर्जन की भाँति गर्ज कर उसे पीछे धकेलते हुये बोले—

"क्या कहा ? फिर कहो"।

"महाराणा, इससे भी महत्व-पूर्ण प्रश्न सामने है, आपका प्राण संकट में है। उसकी रक्षा कीजिये।" वह चौंक उठी।

एक मशाल का प्रकाश खिड़की की राह उधर ही आता दीख पड़ा। साथ ही नीचे बाग में बहुत से पैरों की आहट सुनाई पड़ी। इसके बाद शस्त्रों की झनझनाहट तथा बहुत से लोगों की कर्कश कण्ठ-ध्वनि सुनाई पड़ी।

राणा ने पागल की भाँति दाँत पीस कर कहा—

"ओह ! दगा—इस समय कोई शस्त्र भी मेरे पास नहीं।"

"आप पीछे की खिड़की से कूद कर भागिए महाराणा। और पश्चिम द्वार से बाहर ही अपनी छावनी में पहुँच जाइये, मैं द्वार रोकती हूँ।"

वधू द्वार की ओर लपकी।

राणा झटपट खिड़की की ओर दौड़े। उन्होंने खिड़की खोलना चाहा—पर वह बाहर से बन्द थी। उन्होंने हताश हो चिल्ला कर कहा—

"वह तो बाहर से बन्द है"।

वधू द्वार पर अड़ी खड़ी थी, उसने वहीं से चिल्ला कर कहा—

"शोक शोक, इन किवाड़ों में कोई बेंबड़ा और साँकल भी नहीं है"।

राणा किसी शस्त्र की खोज में व्यर्थ इधर उधर दौड़ने लगे। फिर उन्होंने वधू के पास आकर कहा—

"कैसे शोक की बात है—यहाँ कोई शस्त्र भी तो नहीं?" शोर बढ़ रहा था।

वधू ने कहा—

"स्वामी, जल्दी कीजिये, वह चीमटा लीजिए, उससे फ़र्श की बीचों बीच की उस बड़ी पटिया को उखाड़ लीजिये—उसके नीचे सीढ़ियाँ हैं। वह तहखाना चौक में आपको ले जायगा-वहाँ से आप अपना मार्ग ढूँढ़ लीजिये।

महाराणा बिजली की गति से पटिया उखाड़ने को दौड़े। भयानक कोलाहल अब पास आरहा था, लोगों के पैरों की आहट बढ़ रही थी, लोग क्रोध में चिल्ला रहे थे।

वधू ने चिल्ला कर कहा—"आप जब तक भीतर न उतर जायेंगे मैं उन्हें रोकूँगी।"

दरवाज़े पर चोटें पड़ने लगीं। वधू ने द्वार से अपना कोमल शरीर चिपका लिया—और अपनी सुनहरी मृदुल बाँहों को लोहे के बड़े बेंबड़ों की जगह डाल दिया। वह वीर बाला, जहाँ भारी चटखनी की ज़रूरत थी, वहाँ अपनी कोमल बाँहों का अड़ंगा डाले स्थिर खड़ी रही।

बाहर सैकड़ों चोटें पड़ रही थीं, और उसके हाथों में उसके प्राण आ जूझे थे। उसकी आँखें निकली पड़ती थीं पर वह दाँतों से होंठ चबाती हुई उस असह्य वेदना को सह रही थी। उसकी दृष्टि उसे पत्थर की पटिया पर थी—जो राणा के जाने पर ठीक २ न जमकर बैठ सकी थी।

दर्वाजा—मानो अब उखड़ा—अब उखड़ा। उसमें हथियार छेदे जा रहे थे, उनकी नोकें उसके कोमल शरीर में गड़ रही थीं और रक्त की धारा उसमें से बह रही थी। उसकी बाँह—दर्वाजे पर बाहर से जोर करने के कारण कमान की भाँति मुड़ गई थी। परन्तु उसने दांतों से अपने होंठ इतनी दृढ़ता से दबा रखे थे कि एक शब्द तक हाय का उसके न निकल सका।

राणा ने भीतर से चिल्ला कर कहा—"मैं यहाँ चूहेदानी में बन्द चूहे की भाँति हूँ। उधर का दर्वाजा बन्द है।"

कोमल बाँह उस भयानक आक्रमण का कहाँ तक सामना करती? द्वार टूट गया। वह मुँह के बल गिरी। वह हाँफ रही थी। उसकी बाँह टूट गई थी। क़ातिल अन्दर घुस आये, एक ने वधू को कुत्ते की भाँति एक लात मारकर पूछा, "बता, राणा कहाँ है?

यह प्रश्नकर्ता और ठोकर मारने वाला स्वयं राव मालदेव था।

वह कुछ न बोली। वह बेसुध होकर गिर गई।

एक सिंह गर्जना करके राणा एक ही छलाङ्ग में ऊपर आगये। उनके हाथ में वही भारी पटिया थी। उसे उन्होंने एक सिपाही के

सिर पर दे मारा। सिपाही अर्राकर गिर गया, उसकी तलवार झनाकर अलग जा गिरी। उसे हाथ में लेकर राणा ने कहा—'अरे, हत्यारो कायरो, स्त्री-हत्या के पातकियो! अब आओ।'

राणा समर का चिर अभ्यस्त खेल खेलने लगे। रुण्ड मुण्ड कट कर धरती पर गिरने लगे। मार-काट और चीत्कार से रात्रि में पर्वत काँप गये। राणा जिसपर तलवार का हाथ चलाते वह उसकी गर्दन को साफ करती हुई, दूसरे के धड़ को चीरती और फिर तीसरे के हाथ पैरों का सफाया करती पार निकल जाती थी।

लाशों के ढेर लग गये। राणा उन्हें पैरों से रौंद कर तलवार चला रहे थे। नये २ सिपाही टिड्डीदल की भाँति चले आ रहे थे। राणा के पास साधारण तलवार थी। बचाव का कोई सरंजाम न था। धीरे धीरे राणा का शरीर क्षत-विक्षत होने लगा, और रक्त के अधिक बहने से वे शिथिल होने लगे।

हठात् उन्होंने बिगुल की ध्वनि सुनी। राणा और भी जोश में हाथ चलाने लगे। क्षण भर में राणा के सर्दार और वीर भीतर घुस आये। फिर एक बार भयानक तलवार चली। अब चीत्कार और हाय हाय का अन्त न था।

सर्दारों ने आकर महाराणा को हाथों ही हाथों में उठा लिया। युद्ध समाप्त हो चला था। और शत्रु सब काट डाले गये थे। सर्दार ने कहा—

"महाराणा की जय हो-हम लोग बड़े भ्रम में पड़ गये थे।"

महाराणा ने कहा—"ठहरो, यह बात पीछे होगी। अभी वधू को ढूँढ़ना है—वह शायद लाशों में दब गई है।"

"अन्नदाता, वे शिविर में हैं, उन्हीं ने हमें सूचना दी है।"

महाराणा ने कहा-'तो जल्द चलो।' वे घोड़े पर न चढ़ सकते थे। पालकी में उन्हें ले जाया गया।

वह शैया पर मुमूर्षु अवस्था में पड़ी थी। राजवैद्य उसके उपचार में व्यस्त थे।

राणा ने कहा—

"राजपुत्री, तूने विषम साहस किया, क्या तूने द्वार में बाँह अड़ाई थी?"

राणा ने देखा—बाँह की हड्डी चूर चूर हो गई है और घावों से उसका शरीर छलनी हो रहा है।

वधू ने मुस्करा दिया,

राणा की आँखों से आँसू निकल पड़े, उन्होंने कहा—

"राजपुत्री! क्षमा करना, मैंने तुम्हारा अपमान किया था"

कुछ क्षण वधू के मुख पर वैसी ही मुस्कान छाई रही। उसने कहा

स्वामिन्! यह अधम शरीर अच्छा काम आया; अब—यदि उस जन्म में फिर कभी ऐसा सुयोग हो तो क्या आप इसी दासी को अपनावेंगे?"

"वीर बाला, तुम जीवित रहो, मैंने तुम्हें ग्रहण किया—तुम राजमहिषी हो।"

वधू के मुख पर हास्य आया और आईं आँसुओं की दो बूँदें। वे बूँदें क्षण भर आँखों में रहीं और फिर ढरक गईं—उन्हीं के साथ ढरक गये—वे वीर और प्रेमी प्राण !!!

मेड़ते का सरदार

१

भयानक गर्मी थी। प्रातः काल का समय था, जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह मर चुके थे और उनके ज्येष्ठ पुत्र भी दिल्ली में मार डाले गये थे। राजमहिषी और सरदार दुर्गादास राठौर कुमार अजीतसिंह को लेकर उदयपुर महाराणा की शरण में जा बैठे थे। जोधपुर का क़िला शाही दख़ल में था। बादशाह आलमगीर के साले का भतीजा मिर्ज़ा नियामतुल्लाख़ाँ वहाँ का क़िलेदार नियत किया गया था। वह एक तलैटी की पहाड़ी पर बनते हुए नये क़िले के मजदूरों की रेल-पेल देख रहा था।

जहाँ क़िलेदार खड़ा था, उसके समीप ही दाहिने हाथ की तरफ़ वह विशाल और मज़बूत क़िला तैयार हो रहा था। उसकी

ऊँची और साफ़ सफेद पत्थर की दीवारों और बुर्जियों ने मानो उस छोटी-सी पहाड़ी को सुन्दर मुकुट पहिना दिया था। उस पर प्रातः काल की सुनहरी किरणों ने एक अपूर्व चमक उत्पन्न कर दी थी। क़िले के बाँईं ओर एक सड़क थी जो क़िले के मुख्य फाटक तक जाती थी। इस सड़क पर उस तेज़ धूप में कितने ही मनुष्य और पशुओं के झुण्ड पत्थर के भारी २ टुकड़ों और लकड़ी के वज़नी शहतीरों को ढो ढो कर क़िले के फाटक की ओर बढ़ रहे थे। पसीने से तर-ब-तर आदमी, हाँफते हुए और गर्मी से घबराए हुए बैलों और भैंसों एवं ऊँटों को बराबर हाँक रहे थे। कभी वे उन्हें आगे को धकेलते, कभी पीछे से धक्का देते और कभी क्षण भर पशु को विश्राम देने के लिए ठहर जाते और स्वयं अपना भी पसीना पोंछ लेते थे।

क़िले के भीतर से भी काम करने की आवाज़ आ रही थी। भारी भारी हथौड़ों की चोट और पत्थर तोड़ने के शब्द तथा लोगों के चिल्लाने पुकारने का कोलाहल उस गर्म वातावरण में भर गया था। क़िला लगभग बन चुका था और अब क़िलेदार उसी में रहने भी लगा था। पर किसी गूढ़ उद्देश्य से बड़े बड़े पत्थरों के ढोकों और खम्भों से खूब मजबूत और ऊँची फ़सीलें और बुर्जियाँ तैयार की जा रही थीं, जो वर्षों तक बेज़रब मोर्चा ले सकती थीं।

आदमी और पशु जो यहाँ काम कर रहे थे उमरावों और

सरदारों के थे, जो क़िलेदार ने बेगार में उनसे लिये थे। यह आवश्यक था कि प्रत्येक सरदार क़िलेदार को बेगार दे। सभी ने उसकी आज्ञा का पालन किया था, क्योंकि प्रत्येक सरदार को ज्ञात था कि उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने में ख़ैर नहीं है। ऐसा करने पर तुरन्त ही भयानक विपद आने की सम्भावना है। इस लिए उन्होंने अपने मनोभावों के विपरीत इसे बेगार दी थी।

क़िलेदार सड़क से थोड़े ही फ़ासले पर खड़ा खूब ध्यान से यह सब देख सुन रहा था। उससे कुछ हट कर उसके अमीर उमराव और सरदार खड़े धीरे धीरे फुसफुस करके बातचीत कर रहे थे। परन्तु उनकी नज़र क़िलेदार की ओर थी।

एक बूढ़े सरदार ने अपनी सफेद डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा "आज निश्चय किलेदार साहेब गुस्से में हैं। देखो वे किस तरह होठ चबा रहे हैं। मदद तो ठीक चल रही है। इस भीषण गर्मी में क्या यह कुछ आसान है?" बूढ़े ने एक लम्बी साँस ली और विषाद भरी दृष्टि से क़िले की ओर देखा।

बूढ़े सरदार की बात सुनकर एक युवक सरदार धीरे से हँस दिया। इसकी आँखें खूब चमकीली और काली थीं, यह उस बूढ़े के पास ही खड़ा था। उसने विनोद के स्वर में कहा—'क़िलेदार साहेब अपने पापों के प्रायश्चित्त के भय से भयभीत हैं'। इसके बाद उसने गम्भीरता से धीमे स्वर में कहा—'वह दिन अब निकट आरहा

है। नहीं कहा जा सकता कब दुर्गादास इसके सिर पर आ धमके।'

इसके बाद उसने क़िलेदार पर दृष्टि डाली। बूढ़े सरदार ने उसी भाँति फुसफुसा कर कहा—"निस्सन्देह वह समय आ गया है जब दुर्गादास पूरे लवाजमे से महाराणा की सहायता लिये यहाँ आ धमकेगा।"

युवक सरदार ने कहा—"यही तो। क़िलेदार साहेब इस बात से बेखबर नहीं हैं। उन्हें पूरा भय है और वे यह संगीन तैयारी इसी मतलब से कर रहे हैं।" पीछे से किसी ने फुसफुसा कर कहा—"सच जानो, दुर्गादास का भूत आठों पहर उसके सिर पर सवार रहता है।" पाँच छः आवाज़ धीमी किन्तु दृढ़ता पूर्वक उठीं—"बिल्कुल ठीक, दुर्गादास का उस पर ऐसा ही रुआब है। (कुछ और धीरे से) और मेड़ते के राव साहेब से भी वह बहुत भयभीत और शङ्कित रहता है।"

एक सरदार ने वक्रदृष्टि से देखकर कहा—क्यों, आप ऐसा कैसे कह सकते हैं?

'इसलिए कि वह युवक सरदार सशक्त, धर्मात्मा और सुजन है। (कुछ और झुक कर) फिर वह दुर्गादास का जिगरी दोस्त और सहायक भी है। क्या आपने नहीं देखा कि वह किस भाँति क़िलेदार साहेब से दूर ही दूर रहता है। बिना आज्ञा कभी दरबार में आता भी नहीं, आना चाहता भी नहीं। वह केवल

समय की प्रतीक्षा कर रहा है।' इतना कह कर वह सरदार तनिक हँस दिया।

वृद्ध सरदार बोला—"सचमुच, तब आज के दरबार में भी तो वह बुलाया गया है। वह आज आया भी है या नहीं, इसमें तो सन्देह नहीं कि वह युवक सरदार बड़ा वीर, बाँका और सरल-चित्त है।"

इस पर उसी सरदार ने अति धीरे से कहा—'वह आया है। क़िलेदार ने जब तक उसे देख नहीं लिया, वह निश्चिन्त नहीं हुआ। धीरे धीरे सरदारों में कानाफूसी बढ़ चली। क़िलेदार अभी तक वहीं खड़ा था। वह उदास और चिन्तित था पर किले के काम को ध्यान से देख रहा था। वह सोच रहा था कि निस्सन्देह मैं सुरक्षित हूँ। क़िले की यह नई तिहरी फ़सीलें दुर्भेद्य हैं। अब चाहे जो कोई आवे। उसने क़िले की तरफ़ घमण्ड-पूर्ण दृष्टि से देखा और कमर में लटकती तलवार की गँगा-जमनी काम की मूँठ पर हाथ रक्खा। फिर भुनभुना कर कहा—'यह काफ़ी है, काफ़ी से भी ज्यादा है।' उसने एक हुँकार भरी और खूब तनकर खड़ा हो गया। उसके कान में उसके भाग्य ने कहा—भाग्यवान् बादशाह के साले के भतीजे, अब तू अजेय है। काफ़िर राजपूत तेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकेंगे।

एक हास्य-रेखा उसके होठों में फैल गई। उसने पीछे फिर कर बारह कोस की दूरी पर स्थित मेड़ते के दुर्ग की धुँधली

छाया पर दृष्टि डाली। सुदूर पर्वत-शृंग पर स्थित क़िले की विशाल बुर्जियों पर उसकी दृष्टि अटकी। नीचे का विस्तृत बन और जंगल की घाटियाँ उस प्रभात के धीमे प्रकाश में धुँधली-सी दीख रही थीं। 'मैं अब अजेय हूँ' उसने मानो स्पष्ट कहा और वह धीरे से हँस पड़ा। क्या समुद्र पर रस्सियों का पुल बँध सकता है? क्या चाँद पर बैल चढ़ सकता है? उसने फिर चारों तरफ देखा। असंभव है, मैं अजेय हूँ। भय क्या है? परन्तु वह मेड़ते का.....। वह एकाएक चौंक पड़ा। उस पथरीली पहाड़ी सड़क पर उसी समय दो छोटे सफ़ेद थके हुए बैल एक बहुत भारी शहतीर को गाड़ी में ढोए लिए आ रहे थे। यह बोझा बेचारे जानवरों के लिए बहुत ही अधिक था। पर वे उसे धीरे धीरे बड़े कष्ट और धैर्य से खींच रहे थे। सूरज की तेज चमकती धूप झुलसाए डालती थी। उस स्थान से थोड़ा आगे बढ़कर, जहाँ क़िलेदार खड़ा था, एक बहुत बड़ा ढलाव था जो शीशे की भाँति चिकना और फिसलने वाला था। थकान और गर्मी से अधमरे जानवर इस दशा में भी अपना बोझा ढो रहे थे, उनका हाँकने वाला आदमी चाबुक मार मार कर और चिल्ला चिल्ला कर उन्हें हाँक रहा था। ज्यों ही वह क़िलेदार के पास से होकर गुजरे कि एक बैल का पैर फिसल गया, और वह घुटनों के बल गिर गया। उसके साथ ही दूसरा बैल और ऊपर से भारी वजन भी गिर पड़ा। दोनों जानवरों ने भरपूर जोर मारा पर अन्त

में पड़ गये। दयनीय बोझ ऊपर और भयानक ढलाव नीचे था। हाँकने वाले ने हताश दृष्टि से नीचे की ओर देखा और फिर क्रोध भरी दृष्टि से क़िलेदार को देख कर होठ चबाने लगा। पीछे जो गाड़ियाँ और मज़दूर आ रहे थे उनके लिए रास्ता बिल्कुल ही बन्द होगया।

क़िलेदार की भौंहें तन गईं। क्षण भर वह गिरे हुए बैलों और रुके हुए मनुष्यों एवं गाड़ियों को देखता रहा। फिर उसने उस डाढ़ी वाले सरदार को हाथ के इशारे से बुलाकर बैलों की ओर उँगली से संकेत करके पूछा—ये जानवर किस शख्स के हैं?

सरदार ने कहा—जनाब, ये जानवर मेड़ते के राव दुर्जन हाड़ा के हैं। परन्तु निस्सन्देह.....।

वृद्ध सरदार की बात मुँह ही में रही। क़िलेदार ने तड़प कर चिल्ला कर कहा—क्या मेड़ते के राव के? उसका मुँह क्रोध से लाल हो गया। उसने क्रोध से काँपते हुए कहा—"मेरे लिए उसने ये जानवर भेजे हैं, उसकी यह हिम्मत? क्या उसके यहाँ ऐसे ही जानवर हैं? कदापि नहीं। यह मेरी तौहीन की गई है, मेरा मखौल उड़ाया गया है। उसने अपने हाथों की उँगलियों को मसल डाला। उसका मुख भयंकर हो गया। उसने निकट खड़े हुए सभी सरदारों पर एक ज्वालामयी दृष्टि डाली और फिर चिल्ला कर कहा—"मैं उसकी अच्छी तम्बीह करूँगा। मैं बता दूँगा कि

बादशाह के क़िलेदार के काम में ग़फ़लत करने का क्या नतीजा होता है और यह भी अच्छी तरह बता दूँगा कि शाही क़िलेदार का हुक्म किस तरह माना जाता है। इस बैल की जगह उसके कंधों पर जुवा रखा जायगा। और जब तक वह आकर इस ढिठाई के लिए क्षमा न माँगेगा मैं उसे कदापि न माफ़ करूँगा। उसके मग़रूर और सरकश सिर को मैं कुचल डालूँगा और उसे धूल में मिला दूँगा।"

सरदारों में सन्नाटा छा गया। सब पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े रह गये। वह भूरी डाढ़ी वाला सरदार आगे बढ़ा। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु एक नवयुवक जो आगे खड़ा था, जिस की आँखें काली और चमकीली थीं और समझ गया था कि क्या होने वाला है, वहाँ से खिसक कर बेतहाशा भागा।

२

दरबार का समय बिलकुल निकट आ गया था। गद्दियाँ क़रीने से बिछ चुकी थीं। बीच में क़िलेदार का उच्चासन था। क़िले का एक विशाल भवन इसके लिए सजाया गया था। द्वार के पास हाथी और पैदल सेनायें एवं ऊँटों की क़तारें सज्जित खड़ी थीं। मेड़ते का युवक राव इसी भवन में खिड़की और सिंहद्वार के बीच चहल-क़दमी कर रहा था। उसका लंबा क़द, चौड़ी छाती और सुन्दर मुख उसकी महत्ता का परिचय दे रहा था। वह पीले

साटन की पोशाक पहने था, उसके सिर पर मोटड़े की महीन पाग थी। उसके नीचे उसके काले, चिकने घुँघराले बाल लहरा रहे थे। वह हँस-हँस कर वहाँ काम-काज में व्यस्त सिपाहियों और कर्म-चारियों से बातें करता जारहा था। वह कह रहा था, अब क़िलेदार साहब नाहक देर कर रहे हैं। इधर भूख के मारे मेरा पेट उलट-पलट हो रहा है। धूप की तेज़ी तो देखते ही हो, यह समय तो चुपचाप खा-पीकर घर में बैठने का है। कुछ मुँहलगे कर्मचारी उसकी बात पर हँसकर एकाध शब्द कह देते थे। वह बीच-बीच में ज़ोर से हँस भी देता था।

अभी हास्य से उसके हीरे के समान स्वच्छ दाँतों की एक छटा दीखी ही थी। वह युवक हाँफता हुआ, फाटक पार करता उसके पास पहुँचा। युवक सरदार अपने विश्वस्त अनुचर को इस भाँति व्यस्त होकर आता देख चौंक पड़ा। उसने आगे बढ़ कर उसके कंधे पर हाथ धरा और कहा—"मानिक, क्या बात है? कह।" "महाराज!" उसने सूखे कंठ और भयभीत नेत्रों से धीमे स्वर में कहा—"जल्द भागिए, कुशल नहीं है। दुष्ट क़िलेदार श्रीमानों का भयानक अपमान किया चाहता है।"

युवक राव ने सुनकर सिर ऊँचा उठाया। उसकी छाती फैल गई, और नथुने फूल गए। उसने तलवार की मूठ पर ज़ोर से हाथ दे मारा। उसके ख़ास वीर चारों तरफ से इकट्ठे हो गए। उनकी तलवारें खनखना उठीं। उनके बीच में कठिनाई से साँस

लेते हुए युवक अनुचर ने सारा माजरा कह सुनाया। अन्त में उसने कहा—"अन्नदाता, प्राण और प्रतिष्ठा लेकर भागिए, वह आपे में नहीं है।"

सरदार का मुँह लाल अङ्गारे की भाँति हो गया। उसने लरजती ज़बान से कहा—"घोड़ा, मेरा घोड़ा कहाँ है?"

"श्रीमान्, वह पीछे की खिड़की पर तैयार है, आप चोर दरवाज़े से.....।

सरदार का कुम्मैत असील घोड़ा हवा में उड़ रहा था। जोधपुर का क़िला क्षण-भर में मीलों रह गया था। गर्द का गुबार उसके पीछे उड़ रहा था।

३

लूनी नदी जोर पर थी। किनारे पर नाव खड़ी थी। नाविक ने जोर से पुकार कर कहा—"क्या श्रीमान् पार जायँगे?"

"हाँ, अभी।"

"आइए सरदार!"

"पर लोगे क्या?"

"एक रुपया अन्नदाता।"

सरदार की जेब खाली थी, वह सब कुछ वहीं भूल आया था, उसने जेबों में हाथ डाला, और पीछे की ओर मुड़कर देखा। कुछ ही फ़ासले पर सैकड़ों सवार पीछे दौड़े आ रहे थे, गर्द का

बादल उठ रहा था। उसने हँसकर कहा—"किन्तु मेरे पास देने योग्य यह तलवार और यह घोड़ा है। घोड़ा इस वक्त नहीं दूँगा। तुम तलवार ले लो, एक रुपया से बहुत अधिक मूल्य की है।" सरदार फिर हँसा। उसकी धवल दंत-पंक्ति फिर दिखलाई पड़ी।

नाविक ने मुजरा किया और कहा—"महाराज की जय हो, दरबार शीघ्रता करें, यह तलवार तो श्रीमानों के कर-कमलों में ही शोभा देने योग्य है। मैं मजदूरी ड्योढ़ियों से ले आऊँगा। शत्रु सिर पर आ गए हैं।"

घोड़ा और सवार सकुशल उस पार पहुँच गये। सरदार ने मल्लाह पर एक दृष्टि फेंकी, और घोड़ा छोड़ दिया।

घोड़ा उड़ा जा रहा था। सूरज आग बरसा रहा था। पानीदार जानवर और वीर सरदार तीर की तरह रास्ता चीरते मेड़ते की ओर बढ़ रहे थे। उसने एक ऊँचे टीले पर चढ़ कर क्षण-भर पीछे मुड़कर देखा। बहुत दूर सिपाहियों की एक टुकड़ी घोड़ों की टापों से गर्द उड़ाती हुई, धूप में तलवारें चमकाती हुई धावा मार रही थी। बिना क्षण-भर ठहरे घोड़ा छोड़ दिया। वह जानता था कि किलेदार और उसके सैनिक पीछा कर रहे हैं, और इस दौड़ में उसके प्राणों की बाजी है।

अन्त में उसे मेड़ते के किले की बुर्जियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगीं, और वह धीरे धीरे निकट आ गया। वह विशाल फाटक, जो उसका प्यारा और चिर-परिचित था, सम्मुख सिर उठाए खड़ा

था। खाई का विशाल पुल गिरा हुआ था। घोड़ा थकावट से बेदम हो रहा था। उसे कूद कर पार करना असंभव था। उसने चिल्लाकर पहरे के संतरियों को हुक्म दिया—"पुल को उठा दो, पुल को उठा दो, जल्दी करो जल्दी।"

तत्काल भारी-भारी ज़ंजीरों से लुढ़कता हुआ पुल ठिकाने आ लगा। सरदार ने उस पर कदम रक्खा, और अघाकर साँस ली, अब वह सुरक्षित था।

४

वह प्रकाशमान् दो नेत्रों के समान दो पुत्रों की माता थी। सरदार की आवाज़ सुनकर वह घबराई हुई पति की ओर झपटी। सरदार पसीने और धूल से तर-ब-तर घोड़े के पास खड़ा था। घोड़ा तड़पकर धरती में दम तोड़ रहा था। भयानक दौड़ और कड़ी मञ्जिल से उसकी छाती फट गई थी। मुँह और आँख-कान से खून गिरा रहा था। उसने पूछा—

"स्वामिन्, माजरा क्या है?"

"कुछ नहीं प्रिये, परन्तु मेरा प्यारा यह जानवर आज बिछुड़ा" उसने वेदना-पूर्ण दृष्टि से पशु को देखा। उसकी आँखों से दो स्वच्छ आँसू टपक पड़े।

राजपूत बाला ने स्वामी का हाथ पकड़ा और कहा—"स्वामिन् और सब तो कुशल है?"

"वह भेड़िया क़िलेदार मेरे पीछे आ रहा है। शोक इतना ही है कि इस समय मैं युद्ध नहीं कर सकता। दुर्गादास अभी भी नहीं आए। नौमी तो परसों ही व्यतीत हो गई।"

युवक अधीर होकर होठ चबाने और टहलने लगा।

"नाथ अधीर न हूजिए; आपको यहाँ न ठहरना चाहिए। यह सुरंग की चाभी है। मेरे लिए सौ राजपूत बहुत हैं। इनसे मैं क़िले की रक्षा कर लूँगी। शेष दो सौ सिपाही लेकर आप इसी क्षण उदयपुर को प्रस्थान करें। भगवान् मंगल करेगा।"

"परन्तु प्रिये, क्या मैं कायर की भाँति भागूँ? विशेषकर तुम्हें इस विपत्ति में अरक्षित छोड़कर?"

"नहीं स्वामी, यह भागना नहीं, रक्षा करना है। राजपूतनी कभी अरक्षित नहीं रहती। जाइए, क्षण-भर खोना भी भयानक है।" इतना कहकर उसने एक बूढ़े राजपूत की ओर देखकर कहा "महाराज का घोड़ा तैयार है?"

"हाँ माता।"

"और कौन कौन तैयार हैं?"

तीन सौ तलवारें एक साथ नङ्गी हो गईं।

"परन्तु देखना, केवल महाराज के प्राणों और प्रतिष्ठा का ही प्रश्न नहीं है। जोधपुर का उद्धार भी महाराज के निर्विघ्न उदयपुर पहुँचने पर निर्भर है।"

"राजमाता निश्चिंत रहें।" राजपूतों ने गर्ज कर कहा।

राजपूतनी ने घोड़े की रास पकड़ी, और सरदार के निकट ले गई। वह चुपचाप किसी गूढ़ चिंता में निमग्न था। उसने तनिक तीखे स्वर में कहा—"सवार हूजिए स्वामी, राजपूत ऐसे समय में सोच-विचार नहीं करते।"

द्वार पर आघात लगने लगे। सरदार चौंक पड़ा, उसने घोड़े की बाग थामी, और ज़ोर से होंठ काट-कर उछला। घोड़ा दौड़ने को अधीर हो रहा था। सरदार ने तलवार नंगी करके कहा—"प्रिये! क़िला खूब सुरक्षित और दृढ़ है, और तुम उससे भी अधिक। वह द्वार पर आ पहुँचा है, पर वह इतने शीघ्र लौटने की कल्पना भी नहीं कर सकेगा। मैं अब यहीं आकर अन्न-जल ग्रहण करूँगा।"

उसने पत्नी की ओर प्यार से देखा, और फिर कहा—"प्रिये, तुम्हें और बच्चों को यों छोड़ कर जाना धिक्कार-योग्य है, परन्तु प्रिये...." वह आगे कुछ न बोल सका। उसने हाथ बढ़ाकर पत्नी का हाथ थाम लिया। कुछ ठहर कर उसने अवरुद्ध कंठ से कहा—

"प्रिये! राजपूत का जीवन बहुत कठिन है।"

"और राजपूतनी का उससे अधिक।"

वह मुस्कराई, पर उसकी आँखों से दो मोती-से आँसू गिर गए। उन्हें पोंछकर उसने व्यग्र स्वर में कहा—"ओह! अमूल्य समय नष्ट हो रहा है।"

सुन्दर सरदार ने एक बार फिर पत्नी पर दृष्टि डाली। और "प्रिये! विदा", कह कर लोहे के छोटे फाटक की ओर बढ़ा। उसके पीछे धीरे-धीरे २०० राजपूत भी उसी सुरंग में विलीन हो गए।

५

सिंहद्वार पर भीषण आघात हो रहे थे। वह स्वयं अपना व्यथित हृदय लिए किले की बुर्जी पर आ खड़ी हुई। उसके हाथ में नंगी तलवार और कमर में रत्न-जटित कटार थी। उसके पीछे १०० राजपूत योद्धा थे। उसने सब से कह दिया था—मैं स्वयं ही बात करूँगी। कोई न बोले, न शस्त्र चलावे।

बुर्ज पर से उसने देखा, सहस्रों सिपाही सफील के नीचे शस्त्र चमका रहे और शोर मचा रहे हैं। उनका सरदार स्वयं किलेदार था। वह एक सफेद घोड़े पर चढ़ा था। रानी को देखते ही उसने गर्जकर कहा—"मैं हुक्म देता हूँ कि क़िले को खोल दो।"

"आप कौन हैं, और क्यों ऐसा हुक्म देते हैं?"

"मैं शाहनशाह आलमगीर का रिश्तेदार और जोधपुर का क़िलेदार हूँ। मैं कहता हूँ, दरवाजा खोल दो। वह मग़रूर सरकश सरदार कहाँ है? उसे इसी वक्त मेरी ख़िदमत में हाज़िर करो, वरना क़सम कलामे पाक की, मैं किले की ईंट से ईंट बजा दूँगा।"

रानी ने धीर-गम्भीर स्वर में संयत भाषा में कहा—"आप ऐसे प्रतिष्ठित शाही मेहमान के लिये द्वार खोलने में मैं बिल्कुल ही असमर्थ हूँ। वे खूब मज़बूती से बन्द हैं। आप अपना इरादा तो बताने की कृपा करें।"

इसके बाद उसने पास खड़े एक राजपूत से धीरे-से झुककर कहा—"देखो तो, क्या सुरंग की पिछली खिड़की से सरदार पार हो चुके?"

"अभी नहीं।" राजपूत ने नम्रता से कहा।

किलेदार ने झुँझलाकर कहा—"मेरा इरादा, तुम मेरा इरादा पूछती हो? और मुझसे ही? खुदा की क़सम, मैं इस गुस्ताख़ी को नहीं बरदाश्त कर सकता। मेरा इरादा अपने उस घमण्डी सरदार से ही क्यों नहीं पूछ लेतीं। मैं फिर कहता हूँ, दरवाज़ा खोलदो।"

रानी ने तलवार की नोक पत्थर में गाड़कर, उस पर झुककर, सरलता से नीचे झाँक कर पूछा—"आख़िर, आप ऐसे प्रतिष्ठित शाही रिश्तेदार से रावसाहब के झगड़े का कारण क्या है?"

किलेदार गुस्से से लाल हो गया। उसने गर्जकर कहा—

"क्या तुम मेरा हुक्म नहीं सुनतीं? किला मेरे सुपुर्द कर दो, और सरदार को मेरे हवाले करो।"

रानी ने फिर सहज-गंभीर स्वर में कहा—"आपको किसने इतना क्रुद्ध किया है?" इसी समय एक राजपूत ने झुककर कहा—

"सरदार इस समय सुरंग के बाहर यहाँ से १२ कोस के फ़ासले पर पहुँच गए। अब वह सुरक्षित हैं।"

रानी ने सन्तोष की साँस ली, उसने हुक्म दिया—"सुरंग के उस मुख को अब पाट दो, और उसे छिपा दो।" राजपूत ने आज्ञा-पालन के लिये प्रस्थान किया।

क़िलेदार अधीर हो रहा था। उसने अग्निमय नेत्रों से किले को देखा, और आपे से बाहर होकर कहा—"मैं प्रत्येक को तलवार के घाट उतारूँगा, और किले की ईंट से ईंट बजा दूँगा। अगर अब तुमने एक पल-भर भी मेरा हुक्म मानने में देरी की। अभी उसे मेरे सामने लाओ। मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ, वह कहाँ है?'

क़िले के ऊपरी बुर्ज पर से रानी ने सरल भाव से पूछा—"क्या आप मेरे पति को पूछते हैं?"

"हाँ, वह पाजी सरदार, वह तुम्हारा घमण्डी पति।"

रानी ने तनिक उत्तेजित होकर कहा—"क़िलेदार साहेब, वे स्वयं आपके स्वागत करने की खटपट में व्यस्त हैं। शीघ्र ही वे आपकी ख़ातिरदारी करने को आपके सम्मुख हाज़िर होंगे, तब आप चाहें तो उनके कन्धे पर जुआ रख अपना बोझा उनसे ढुला सकते हैं, पर अभी इसमें कुछ समय लगेगा। तब तक यहाँ पर्वत की उपत्यका में मजे में विश्राम कीजिये। आपके

सिपाहियों के लिए मीठा पानी और घोड़ों के लिए घास यहाँ बहुत है।"

रानी यह कह कर वहाँ से हट गई। और क्रोध से फेन उग-लते हुए किलेदार ने दुर्ग पर आक्रमण करने का हुक्म दिया।

६

तीन दिन बाद।

किला धाँय धाँय जल रहा था। बड़े बड़े फाटक भीषण शब्द कर के जल जल कर गिर रहे थे। राजमहल राख होगया था और उसके साथ ही रानी और उसकी सहचरियाँ भी। प्रत्येक राजपूत के खण्ड हुए पड़े थे। उनकी तलवारें इधर उधर पड़ी थीं और उन पर का लोहू सूख गया था। टूटे हुए भाले धरती में पड़े थे। किले में एक भी जीवित जन्तु न था।

किलेदार जोधपुर लौट रहा था। उसने देखा सम्मुख धूल का बादल उमड़ रहा है। क्षण भर बाद ही उसने चमचमाती तलवारें और उल्लसित सेना का जयनाद सुना। वे किले की लपटों को लक्ष्य कर दौड़े आ रहे थे। किलेदार जब तक सेना का व्यूह बद्ध करे, राजपूत उस पर टूट पड़े। सब से आगे अपने कुम्मैत घोड़े पर वही युवक सरदार था। उसके हाथ में नंगी तल-वार थी। वह अपने मोती के समान दाँतों से होठ चबा रहा था।

उसने तनिक घोड़े की रास रोक पीछे मुड़ कर राठौर दुर्गादास से कहा—

"ठाकराँ, आज्ञा दो; इस पतित हत्यारे के रक्त से अपनी तलवार की प्यास बुझाऊँ।" वह उत्तर के लिए रुका नहीं, तीर की भाँति शत्रु-दल को चीर कर उस में घुस गया। लोग भयभीत होकर भागे। वह सुन्दर सरदार उस समय साक्षात् काल रूप हो रहा था। वह अपने घर-द्वार और स्त्री-बच्चों की बर्बादी और क़त्ल के बदले के लिए बेचैन था।

किलेदार हाथी पर सवार था। उसने मेड़ते के युवक राव को दाँतों से घोड़े की रास पकड़े दोनों हाथों से तलवार चलाते सेना को चीरते हुए सीधा अपनी ओर आगे बढ़ते देखा। उसके पीछे वीर दुर्गादास राठौर अपने पाँच हजार चुने योद्धाओं के साथ दावे चला आ रहा था। किलेदार भय से पीला पड़ गया। उसने पहाड़ी रास्तों पर दूर तक फैली राजपूत सेना की चमचमाती तलवारें देखीं। वह पत्ते की भाँति काँपने लगा।

युवक सरदार ने हाथी पर बर्छे का वार करके ललकारा--"ओ पतित स्त्री-हन्ता, यह मग़रूर सरदार हाजिर है, ले इसके कन्धों पर जुआ रख।" दूसरे ही क्षण वह भयानक काल-रूप बर्छा उसकी छाती के पार था।

वह चीत्कार करके गिर गया। हाथी सैनिकों को कुचलता

हुआ भाग खड़ा हुआ। शत्रु-सैन्य भाग चली। युवक सरदार ने दुर्गादास के निकट आकर कहा--

"ठाकराँ, मेरी इच्छा तो पूर्ण हो चुकी अब चलो जोधपुर का उद्धार करें।"

एक सप्ताह बाद जोधपुर में राठौरों का वैसा ही अधिकार था। परन्तु वह वीर युवक सरदार अपनी पतिव्रता वीराङ्गना पत्नी और पुत्रों को खोकर अधिक नहीं जी सका। वह उस युद्ध के भीषण घावों तथा मानसिक आघातों की चपेट में चल बसा।

आज भी मेड़ते के वृद्ध वीर वंशज उस वीर युवक के साहस और वीरता की गाथाएँ रात को कहानियों में सुनाते हैं, मानो वह अमर हो।

विश्वासघात

१

सन् १६४६ की ग्रीष्म ऋतु की बात है, प्रातःकाल का समय था। एक सुन्दर और सुरक्षित उद्यान में दो बालक गेंद खेल रहे थे। यह बाग़ दिल्ली का प्रसिद्ध शाहीबाग़ रोशनआरा बाग़ था। उस समय शाहनशाह औरंगजेब दिल्ली के तख्त पर आसीन था।

इनमें से एक का नाम अजयसिंह था। यह जोधपुर के स्वर्गीय महाराज जसवन्तसिंह का ज्येष्ठपुत्र था। महाराज काबुल के सूबेदार बनाकर वहाँ भेज दिये गये थे और उनका ज्येष्ठ पुत्र कुछ सरदारों सहित शाहज़ादी रोशनआरा के बाग़ में बतौर ज़मानत और बतौर शाही मिहमान शाहज़ादी की देख-रेख में ठहरे हुये थे।

कुँवर की आयु १६ वर्ष के लगभग थी। सुन्दर श्यामवर्ण, चेहरे पर रक्त की सुर्खी, बड़ी बड़ी काली आँखें, चौड़ी छाती, छरहरा बदन, मोती से दाँत और लम्बी लम्बी बाँहें थीं। सिर के बाल काले, चिकने और सँवारे हुए थे। उसके कानों में बड़े बड़े हीरों की लौंगें थीं और गले में पन्ने का एक कण्ठा लटक रहा था। कुमार उस समय एक स्वच्छ मलमल का अँगरखा और महीन रेशमी धोती पहने थे।

दूसरा बालक उनके पुरोहित धर्मदत्त का पुत्र रविदत्त था। उसकी आयु बारह वर्ष के लगभग होगी। गौर वर्ण, कान्तिमान् चेहरा और दुबला पतला शरीर था।

जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह एक सिंह-विक्रम पुरुष थे, और बादशाह औरङ्गजेब सदा ही उनसे भय खाता था। द्वेष भी रखता था। वे उसके विरुद्ध हथियार उठा चुके थे। उसकी कूट-नीति से भी खूब जानकार थे। परन्तु महाराजा जसवन्तसिंह जैसे प्रतापी योद्धा थे वैसे ही प्रवीण राजनीतिज्ञ भी थे। वे दूरदर्शी भी पल्ले सिरे के थे। यही कारण था कि वे बादशाह के कुचक्रों में फँसकर भी निकल जाते थे। इस बार बादशाह ने उन्हें जान-बूझ कर मौत के मुँह में काबुल भेज दिया था। वह जानता था कि खूँखवार और दुर्दान्त पठान, जो मुग़लों का शासन नहीं मानते, वे क़ाफ़िर हिन्दू का कैसे मानेंगे? पर जसवन्तसिंह नाहर के समान निर्भय थे। उन्होंने काबुल को एक बार अपने भुजबल से

रौंद कर अपना आतङ्क जमा दिया था। इसलिए बादशाह इस वंश से भय खाता और सदा इसके नाश के उपाय सोचता रहता था। महाराज ने अपने राज्य में बहुत सुधार किये थे। वे अपने आधीनों को खिताब और दण्ड भी देते थे। अपने रुआब को उन्होंने कभी नहीं गिरने दिया। वे मग़रूर, स्वाधीन और जबर्दस्त शासक थे।

दोनों बालक खूब मन लगा कर खेल रहे थे। बाग़ के वातावरण में उनकी ज़ोर की हँसी और मधुर वाणी भर गई थी। एक वृक्ष के नीचे, घास पर एक अँगोछा बिछाये एक वृद्ध पुरुष रामनामी कंधे पर डाले और बड़ा-सा तिलक माथे पर लगाये, बैठा ध्यान से उन्हें देख रहा था। यही वृद्ध पुरुष जोधपुर दरबार के कुल-पुरोहित धर्मदत्त जी थे।

बालकों ने मिट्टी के दो किले बनाये थे। उन पर सरकण्डे की तोपें चढ़ा दी थीं और सींक के सिपाही खड़े कर दिये थे। दोनों दर्प से अपनी अपनी सेनाओं का संचालन कर रहे थे। धर्मदत्त के पुत्र ने कुमार के दुर्ग पर आक्रमण किया था, कुमार अपनी सेना का बचाव कर रहे थे। वृद्ध पुरोहित उनका उल्लास, उछलकूद और चिल्लाना सुन सुन कर हँस रहे थे। इसी बीच में अट्ठारह वर्ष के एक सुन्दर युवक ने आकर इन बालकों के खेल में योग दिया। वह बहुमूल्य ज़रदोज़ी के कपड़े पहने था और उसके पैरों में वसली का जूता तथा सिर पर बहुमूल्य रत्न-जटित तुर्रा

था। उसने आकर कहा—दोस्तो, क्या हमें भी आप में से कोई सरदार अपने सिपाहियों में नौकरी देगा? वल्लाह जिधर मैं हूँगा उधर फ़तह और दुश्मन का क़िला चकनाचूर। इतना कह कर उसने हँसकर कुमार की ओर देखा। कुमार ने कहा—शाहज़ादा, आप रविदत्त जी की मदद कीजिए, देखिये उनकी पाँच तोपें छिन चुकी हैं, इस हमले में क़िला हमारा है। आप देखते हैं न, हमारी फौजें खाई को पार कर चुकी हैं।

आगन्तुक शाहज़ादा मुराद था और यह शाहज़ादी रोशन-आरा का प्रिय और कुमार का मित्र था। कुमार से उसकी खूब गहरी दोस्ती गठ गई थी।

शाहज़ादा बोल भी न पाया था कि एक खोजे ने एक बड़ा-सा खत लाकर कुमार के हाथ में दे दिया और झुक कर सलाम किया। कुमार उलट-पुलट कर लिफ़ाफे को देखने लगे। धर्मदत्त जल्दी से उठ खड़े हुए। उन्होंने कुमार के हाथ से लिफ़ाफ़ा लेकर देखा, उस पर शाही मोहर थी। धर्मदत्त ने उसे पढ़ा, कुमार ने भी पढ़ा। उसमें लिखा था—परसों शबबरात के दिन कुमार बादशाह सलामत के दर्बारे ख़ास में हाज़िर होकर जहाँपनाह की क़दमबोसी हासिल करें, बादशाह उन्हें खिलअत अता फ़रमावेंगे। काबुल में महाराज ने तमाम मुल्क में जो अमनो-अमान क़ायम किया है, उसी के सिलसिले में बादशाह यह मिहरबानी दिखाना चाहते हैं।

कुँवर खुशी के मारे उछल पड़ा। वह जोर-जोर से फिर एक बार वह पत्र पढ़ गया। परन्तु धर्मदत्त का मुँह सूख गया। उसका कलेजा थर-थर काँपने लगा। उसने खोजे को उचित उत्तर देकर विदा किया और शाहज़ादे से नम्रता-पूर्वक क्षमा याचना की और कुँवर तथा पुत्र को लेकर अपने निवासस्थल की ओर चल दिया।

घर में घुसते ही रविदत्त ने कुमार के गले से लिपट कर कहा—

"कुमार हमें भी ले चलना। बादशाह को हम भी देखेंगे।"

कुमार ने हँसकर कहा—"क्या सच! अच्छा चले चलना।"

वृद्ध पुरोहित ने उतावली से कहा—

"अरे, ना-ना वहाँ मत जाना।"

कुमार ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा और पूछा—

"क्यों दादा, क्या बात है? यह तो बड़ा शुभ समाचार है।"

"कुमार, शुभ समाचार तो है, पर मैं इसे नहीं स्वीकार करूँगा, मैं नहीं पसन्द करूँगा, कुमार! तुम बालक नहीं, क्षत्रिय बेटे हो—देखो, सोचो यह खत लिखा किसने है? उसने, जिसे तुम्हारे पिता ने नाकों चने चबाये हैं और जो अब भी उसके लिए भय का कारण है। तुम जानते हो इस पापी ने तुम्हारे पिता के मारने को कितने षड्यन्त्र रचे हैं। और यह तुम्हें दगा न देगा—इसका क्या प्रमाण है? इस दुष्ट ने महाराज को

काबुल भेजकर हमें यहाँ ज़मानत के तौर पर रक्खा है। हम पर शाहज़ादी नज़र रखने को तैनात है, हम बाग़ से बाहर जा नहीं सकते। समझे? कुमार, यह बादशाह बड़ा धूर्त, बड़ा चालबाज़, बड़ा काँइयाँ और हमारा जन्म-शत्रु है? बेटे, मैं तुम्हें वहाँ कदापि न जाने दूँगा।

कुमार ने हँसकर कहा—"वाह, दादा जी, आप बुड्ढे होकर डरने लगे हैं" उसने पत्र पर जोर से हाथ मार कर कहा—"दादा जी, निश्चय इसमें भय की कोई बात नहीं।" रविदत्त ने वृद्ध की गोद में बैठ और उसके गले में बाँहें डाल कर अपना कोमल मुख पिता के झुर्री पड़े मुख से लगा कर कहा—"नहीं नहीं पिता जी, हम लोगों को रोकना मत।" वृद्ध ने बालक को प्यार करके पृथक् किया और कहा—

"कुमार, वे तुम्हें शक्तिशाली समझते हैं और इसी लिए तुम्हारा बुरा चाहते हैं"

इसी समय रूपा धाय ने सामने आकर कहा—
"यदि ऐसा है तो कुमार वहाँ नहीं....."

धाय को पूरी बात कहने का अवसर नहीं मिला।
कुमार ने रिसा कर जोर से धरती पर पैर पटक कर कहा—

"धाय माँ तुम हमेशा हमारे काम में भाँजी मारा करती हो। मैं कहता हूँ, मैं ज़रूर जाऊँगा। और रवि को भी साथ ले जाऊँगा। वीरेन्द्रसिंहजी भी साथ रहेंगे। न जाने से वे यह न समझेंगे

कि अजय डर गया, फिर उन्हें बुरा भी लगेगा। दादा, आप आज्ञा दीजिये। आपको भय हो तो आप न जाँय। यहीं रहें।"

आह, कुमार, हठ न करो, मैं बादशाह के क्रोध को युक्ति से शान्त कर दूँगा। कुमार, मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा।"

"नहीं दादा! मुझे न रोकना, मैं जाऊँगा। आप बादशाह को ख़बर दे दें।"

"कुमार पछताओगे।"

"नहीं दादा मैं जाऊँगा, कमर में रक्खूँगा तलवार, ज़रा ऐसा वैसा देखा तो बादशाह के दो टुकड़े कर डालूँगा", कुमार ने जोश में कहा।

२

उस दिन कुछ बदली हो रही थी। पर कुँवर अजयसिंह सुनहरे काम की पोशाक पहन कर रत्नजड़ित पटका कस रहे थे। उनके सिर पर हीरे की कलगी चमक रही थी। और उनका सफेद घोड़ा सिर से पैर तक सुनहरी काम से सज रहा था। हँसते हँसते वे उस पर सवार हुए और किले की ओर चले। पीछे-पीछे छोटे टट्टू पर रविदत्त था। साथ में एक दस्ता राठौड़ों का था।

फाटक पर पहुँचने पर अमीरुद्दौला अमानतख़ाँ ने उनका स्वागत किया। इस आदमी का चेहरा लोमड़ी के समान था।

पतली-पतली छोटी आँखें थीं। इसने दोनों बालकों को घोड़े से उतारा। हँस कर स्वागत किया और भीतर ले गया। उसने कहा--

"जद्दे किस्मत कुँवर साहेब। आज आपको हजरत सलामत का नियाज़ हासिल होगा।"

बात करते-करते वे दीवाने-खास की सीढ़ियों तक जा पहुँचे। यहाँ एक और अमीर ने उनका स्वागत किया। यह एक घुन्ना-सा आदमी था, इसका चेहरा पतला और लम्बा, डाढ़ी बहुत कम, आँखें गढ़े में धँसी हुईं। इसने बहुत कम बातें कीं। धीरे-धीरे इसने कुँवर को दीवाने खास में दाखिल कराया और संकेत से खड़े होने का स्थान बता दिया।

बादशाह सलामत तख्त पर दुजानू बैठे थे। दो लौंडियाँ मोरछल लिये खड़ी थीं। बादशाह सफ़ेद रङ्ग के हलके कपड़े पहने बैठे थे। उनके सिर पर भी सफ़ेद रङ्ग की ज़री के काम की पगड़ी थी। दीवाने खास सफ़ेद संगमर्मर के पत्थर का बना था और वह बहुत खूबी से सज रहा था। फर्श पर लाल रङ्ग का एक बहुमूल्य कालीन बिछ रहा था। दर्वाजों और खिड़कियों में साटन के पर्दे पड़े हुये थे।

बादशाह के चेहरे का भाव गम्भीर था। वह धीरे धीरे अपने उमराओं से बातचीत कर रहा था। दर्बारी लोग हाथ बाँधे चुपचाप खड़े थे। वज़ीरे-आज़म आहिस्ते आहिस्ते खास-खास बातें बादशाह को समझा रहे थे।

बड़ी देर तक बादशाह ने उधर दृष्टि नहीं डाली। कुँवर अजयसिंह चुपचाप खड़े रहे। बहुत देर खड़े रहने के बाद वज़ीरे-आज़म ने अर्ज़ की कि "जसवन्तसिंह का बेटा अजयसिंह दरबार में हाज़िर है।"

बादशाह ने उधर नज़र उठा कर देखा।

अजयसिंह ने कुछ क़दम आगे बढ़कर नज़र गुज़ारी और कोर्निश की।

बादशाह ने देख कर मुस्करा दिया, मगर क्षण भर बाद ही वह कुटिल दृष्टि से कुँवर को घूरने लगा। इसके बाद उसने कहा—"तुम्हें देख कर ईज़ानिब बहुत खुश हुये हैं।"

कुँवर ने फिर झुककर सलाम की और खड़े रहे। तब बादशाह ने कहा, अज़ीज़ आगे बढ़ आओ। डरो मत, तुम्हारे वालिद महाराज जसवन्तसिंह ईज़ानिब के दोस्त और ख़ैरख़्वाहे-तख़्त हैं। उसी सिले में हम तुम्हें ख़िलअ़त बख़्शना चाहते हैं। उम्मीद है बड़े होकर तुम भी अपने बहादुर बाप के मानिन्द बहादुर और ख़ैरख़्वाहे-तख़्त बनोगे।"

कुँवर साहेब ने फिर तनिक सिर झुका दिया। बादशाह ने संकेत किया। एक खोजे ने एक जड़ाऊ ख़िलअ़त लाकर बादशाह के सामने रख दी और बादशाह के इशारे से वज़ीरे-आज़म ने उठाकर ख़िलअ़त कुँवर को पहना दी।

कुँवर ने फिर झुक कर अभिवादन किया और चल दिये।

बादशाह ने एक कुटिल दृष्टि-बाण छोड़ा और होठों ही में हँस दिये।

३

कुँवर खिलअ़त पहन कर बाहर निकले। शाहज़ादा मुराद दीवाने-ख़ास के बाहर उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। उन्होंने दौड़ कर जोर से कुमार का हाथ पकड़ कर कहा—दोस्तेमन, मुबारक। उम्मीद है कि बादशाह सलामत की नज़रे-इनायत से तुम एक बांके सिपहसालार बन जाओगे। क़सम ख़ुदा की, यह ज़र्क़ बर्क़ पोशाक भी तुम पर क्या खिलती है। आह! यह तुम्हारी छोटी-सी तलवार ...., शाहज़ादे ने उसकी जवाहरात जड़ी मूँठ छू ली।

कुँवर ने कहा—शाहज़ादा साहेब, मैं जब तक पूरा जवान नहीं हो जाता, पिता की बड़ी तलवार को नहीं बांध सकता। आह, न जाने जवान होने में अब कितनी देर है।

शाहज़ादा हँस पड़े।

कुँवर ने कहा—"न जाने मेरा जी कैसा कुछ हो रहा है। तबियत घबराती है, बड़ी गर्मी मालूम पड़ती है। अरे, सिर चकराने लगा।"

शाहज़ादे ने घबराकर कहा—"क्या हकीम को बुलवाया जाय? आओ मेरे कमरे में लेट जाओ।"

"नहीं! मुझे जाना चाहिये। मैं घोड़े पर नहीं जा सकता,

हाथी पर जाऊँगा। रवि, हाथी को इधर आने को कह दो!"

अजयसिंह हाथी पर सवार हो कर वापस लौटे। पर मुहूर्त भर ही में उनकी तबियत बहुत अधिक बिगड़ गई। उन्होंने रविदत्त को पुकार कर कहा—"रवि, मैं तो गर्मी के मारे मरा जा रहा हूँ। तमाम बदन में आग लग गई है। प्यास से कण्ठ सूख रहा है। ओह, रवि, ज़रा जल्दी चलो। जल्दी चलो। मरा .... गर्मी .... पानी .... प्या .... स .... पानी .... हा....य ...." कुँवर बेहोश होकर वहीं हाथी पर गिर पड़े और उनके प्राण पखेरू उड़ गये। उनका सर्वाङ्ग नीला होगया था!

धर्मदत्त दौड़े आये। परन्तु होनहार हो चुकी थी। बादशाह सलामत ने जो खिलअत दी थी, वे वस्त्र घातक विष में रँगे हुये थे। उन्होंने अपना काम पूरा कर दिया था।

शाहजादे ने दौड़ते हुए आकर कहा—"मेरे प्यारे दोस्त, यह क्या हुआ? आह! तुम देखते देखते ही चल बसे? अफ़सोस क्या बोलोगे भी नहीं?"

रवि ने गुस्से से कहा—"शाहज़ादा, आपके पिता ने दग़ा की है, उन्होंने इन्हें जहर दे दिया है।

शाहज़ादा चिल्ला-चिल्ला कर रोने और कुँवर की लाश पर सिर पटकने लगा। अमीरुद्दौला आकर शाहज़ादे का हाथ पकड़ कर एक तरफ लेगये—उन्होंने कहा—"शाहज़ादा साहेब, काफिर और तख्त के दुश्मनों से ऐसी दोस्ती करना आपको मुनासिब नहीं।

आप इन्हें दोस्त कहते हैं, पर ये आपके कट्टर दुश्मन हैं। ये साँप के सँपोले हैं। अभी से देखो कैसी फुंकार मारता था। यह तख्ते-मुग़लिया को उलटने को अकेला ही काफ़ी था।"

शाहज़ादे ने अमीरुद्दौला का हाथ झटक दिया और पछाड़ खाकर गिर पड़ा और कहा, "हाय—अब्बाजान ने एक सीधे साधे बालक से दग़ा की।"

❀ ❀ ❀

जैसलमेर की राजकुमारी

१

राजकुमारी ने गर्व से हँस कर कहा—पिता, दुर्ग की चिन्ता न कीजिए। जब तक उसका एक भी पत्थर पत्थर से मिला है उसकी मैं रक्षा करूँगी। चाहे अलाउद्दीन कितनी ही वीरता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे, आप निर्भय होकर शत्रु से लोहा लें।

यह जैसलमेर के राठौर दुर्गाधिपति महाराव रत्नसिंह की कन्या थी। यह इस समय बलिष्ठ अरबी घोड़े पर चढ़ी हुई थी और मर्दानी पोशाक पहिने थी। उसकी कमर में दो तलवारें लटक रही थीं। कमरबन्द में पेशक़ब्ज, पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था। वह चपल घोड़े की रास को बलपूर्वक खींच रही थी जो एक क्षण भी स्थिर रहना नहीं चाहता था।

रत्नसिंह ज़िरह-बख्तर पहने एक हाथी के फौलादी हौदे पर बैठे आक्रमण के लिये प्रस्थान कर रहे थे। सामने सहस्राधि राजपूत सवार नंगी तलवारें लिए मैदान में खड़े थे। उनके घोड़े हिनहिना रहे थे और शस्त्र झनझना रहे थे।

रत्नसिंह ने पुत्री के कंधे पर हाथ धरके कहा—'बेटी, तुझ से मुझे ऐसी ही आशा है, मैंने तुझे पुत्री की भाँति नहीं—पुत्र की भाँति पाला और शिक्षा दी है। मैं दुर्ग को तुझे सौंप कर निश्चिन्त हो गया हूँ। देखना, सावधान रहना। शत्रु केवल वीर ही नहीं धूर्त और छलिया भी है।'

बालिका ने वक्र दृष्टि से पिता को देखा और हँस कर कहा — 'नहीं, पिता जी आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें, किले का बाल भी बाँका न होगा।'

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चमकते हुए कँगूरों पर डाली और हाथी बढ़ाया। गगनभेदी जयनिनाद से धरती आसमान काँप उठे। एक विशालकाय सैन्य अजगर की भाँति किले के फाटक से निकल कर पर्वत की उपत्यका में विलीन हो गई। इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक बन्द हो गया।

२

टिड्डीदल की भाँति शत्रु ने दुर्ग घेर रखा था। सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी। प्रतिदिन यवनदल गोली और

तीरों की वर्षा करते थे, पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाए खड़ा था। यवन समझ गए थे कि दुर्ग विजय करना हँसी ठट्ठा नहीं है। दुर्ग-रक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी शत्रुओं के दाँत खट्टे कर रही थी। उसकी आधीनता में पुराने विश्वस्त राजपूत वीर थे जो मृत्यु और जीवन को खेल समझते थे। वह अपनी सखियों समेत दुर्ग के किसी बुर्ज पर चढ़ जाती और यवन-सेना का ठट्ठा उड़ाती हुई वहाँ से सनसनाते तीरों की वर्षा करती। वह कहती—मैं स्त्री हूँ, पर अबला नहीं। मुझ में मर्दों जैसा साहस और हिम्मत है। मेरी सहेलियाँ भी देखने भर की स्त्रियाँ हैं। मैं इन पापिष्ठ यवनों को समझती क्या हूँ?

उसकी बातें सुन सहेलियाँ ठठाकर हँस देती थीं। प्रबल यवनदल द्वारा आक्रान्त दुर्ग में बैठना राजकुमारी के लिये एक विनोद था।

मलिक काफूर एक गुलाम था, जो यवन-सेना का अधिपति था। वह दृढ़ता और शान्ति से राजकुमारी की चोटें सह रहा था। उसने सोचा था कि जब किले में खाद्यपदार्थ कम हो जायेंगे, दुर्ग वश में आ जायगा। फिर भी वह समय समय पर दुर्ग पर आक्रमण कर देता था, परन्तु दुर्ग की चट्टानों और भारी दीवारों को कोई क्षति नहीं पहुँचती थी। राजकुमारी बहुधा बुर्ज

पर से कहती—ये धूर्त गर्द उड़ा कर और गोली बरसा कर मेरे किले को गन्दा कर रहे हैं। इससे क्या लाभ होगा ?

यवनदल ने एक बार दुर्ग पर प्रबल आक्रमण किया। राजकुमारी चुपचाप बैठी रही। जब शत्रु आधी दूर तक दीवारों पर चढ़ आये तब भारी भारी पत्थरों के ढोंके और गर्म तेल की वह मार पड़ी कि शत्रु-सेना छिन्न-भिन्न होगई। लोगों के मुँह झुलस गये। कितनों की चटनी बन गई। हज़ारों तौबा २ करके प्राण लेकर भागे। जो प्राचीर तक पहुँचे, उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया।

३

सूर्य छिप रहा था। प्राची दिशा लाल लाल हो रही थी। राजकुमारी कुछ चिन्तित भाव से सुदूर पर्वत की उपत्यका में डूबते हुए सूर्य को देख रही थी। उसे चार दिन से पिता का सन्देश नहीं मिला था। वह सोच रही थी कि इस समय पिता को क्या सहायता दी जा सकती है। वह एक बुर्ज के नीचे बैठ गई। धीरे धीरे अन्धकार बढ़ने लगा। उसने देखा, एक काली मूर्ति धीरे धीरे पर्वत की तङ्ग राह से किले की ओर अग्रसर हो रही है। उसने समझा, पिता का सन्देशवाहक होगा, वह चुपचाप उत्सुक होकर उधर ही देखती रही। उसे आश्चर्य तब हुआ जब

उसने देखा—वह गुप्त द्वार की ओर न जाकर सिंह-द्वार की ओर जा रहा है। तब अवश्य वह शत्रु है। राजकुमारी ने एक तीखा बाण हाथ में लिया और छिपती हुई उस मूर्ति के साथ ही द्वार की पौर के ऊपर आ गई। वह मूर्ति एक गठड़ी को पीठ से उतार कर प्राचीर पर चढ़ने का उपाय सोच रही थी। राजकुमारी ने धनुष पर बाण चढ़ा कर ललकार कर कहा—"वहीं खड़ा रह, और अपना अभिप्राय कह?"

काल-रूप राजकुमारी को सम्मुख देख वह व्यक्ति भयभीत स्वर में बोला—"मुझे क़िले में आने दीजिये, बहुत ज़रूरी सन्देश है।"

"वह सन्देश वहीं से कह?"

"वह अतिशय गोपनीय है?"

"कुछ चिन्ता नहीं, कह।"

"किले में आकर कहूँगा।"

"उससे प्रथम यह तीर तेरे कलेजे के पार हो जायगा।"

"महाराज विपत्ति में हैं, मैं उनका चर हूँ।"

"चिट्ठी हो तो फेंक दे?"

"ज़बानी कहना है।"

"जल्दी कह?"

"यहां से नहीं कह सकता।"

"तब ले।" राजकुमारी ने तीर छोड़ दिया। वह उसके कलेजे को पार करता हुआ निकल गया। राजकुमारी ने सीटी दी। दो सैनिक आ उपस्थित हुए। कुमारी की आज्ञा पा रस्सी के सहारे उन्होंने नीचे जा मृतव्यक्ति को देखा—यवन था। दूसरा व्यक्ति पीठ पर गठड़ी में बँधा था। यह देख राजकुमारी ज़ोर से हँस पड़ी। इसके बाद वह प्रत्येक बुर्ज पर घूम घूम कर प्रबन्ध और पहरे का निरीक्षण कर रही थी। पश्चिमी फाटक पर जाकर उसने देखा द्वार-रक्षक द्वार पर न था। कुमारी ने पुकार कर कहा—"यहाँ पहरे पर कौन है?"

एक वृद्ध योद्धा ने आगे बढ़ कर कुमारी को मुजरा किया। उसने धीरे से कुमारी के कान में कुछ और भी कहा।

वह हँसती हँसती बोली—"ऐसा, ऐसा? अच्छा वे तुम्हें घूँस देवेंगे, बाबा जी साहेब?"

"हाँ, बेटी, बूढ़ा योद्धा तनिक हँस दिया। उसने गाँठ से सोने की पोटली निकाल कर कहा—यह देखो इतना सोना है—"

"अच्छी बात है। ठहरो, हम उन्हें पागल बना देंगे। बाबा जी, तुम आधी रात को उनकी इच्छानुसार द्वार खोल देना।" वृद्ध भी हँसता हुआ और सिर हिलाता हुआ चला गया।

दो बज गये थे। चन्द्रमा की चाँदनी छिटक रही थी। कुछ आदमी दुर्ग की ओर छिपे छिपे आ रहे थे। उनका सरदार मलिक काफूर था। उसके पीछे सौ चुने हुए योद्धा थे। संकेत पाते ही

द्वारपाल ने प्रतिज्ञा पूरी की। विशाल महराबदार फाटक खुल गया। सौ व्यक्ति चुपचाप दुर्ग में घुस गये। काफूर ने मन्द स्वर में कहा, यहाँ तक तो ठीक हुआ। अब हमें उस गुप्त मार्ग से दुर्ग के भीतरी महलों में पहुँचा दो जिसका तुमने वादा किया है। राजपूत ने कहा—मैं वादे का पक्का हूँ, मगर बाक़ी सोना तो दो।

यह लो, यवन सेनापति ने मुहरों की थैली हाथ में धर दी। राजपूत फाटक में ताला बन्द कर चुपचाप प्राचीर की छाया में चला। वह लोमड़ी की भांति चक्कर खाकर कहीं ग़ायब हो गया। यवन सैनिक चक्रव्यूह में फँस गये, न पीछे का रास्ता मिलता था न आगे का। वे वास्तव में सब कैद हो गये थे और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे। मलिक काफूर दाँत पीस रहा था। राजकुमारी की सहेलियाँ इतने चूहों को चूहेदानी में फँसाकर हँस रही थीं।

४

यवन-सैन्य का घेरा दुर्भेद्य था। खाद्य सामग्री धीरे धीरे कम हो रही थी। घेरे के बीच से किसी का आना अशक्य था। राजपूत भूखों मर रहे थे। राजकुमारी का शरीर पीला हो गया था। उसके अंग शिथिल हो गये थे, पर नेत्रों का तेज वैसा ही था। उसे कैदियों के भोजन की बड़ी चिन्ता थी।

किले का प्रत्येक आदमी उसे देवी की भाँति पूजता था।

उसने मलिक काफूर के पास जाकर कहा—

"यवन सेनापति, मुझे तुमसे कुछ परामर्श करना है, मैं विवश हो गई हूँ। दुर्ग में खाद्य-सामग्री बहुत कम हो गई है और मुझे यह संकोच हो रहा है कि आपकी कैसे अतिथि-सेवा की जाय। अब कल से हम लोग एक मुट्ठी अन्न लेंगे और आप लोगों को दो मुट्ठी उस समय तक मिलेगा जब तक कि अन्न दुर्ग में रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।"

मलिक काफूर की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा—

"राजकुमारी, मुझे यकीन है कि आप बीस किलों की किस्मत कर सकती हैं।"

"हाँ, यदि मेरे पास हों तो" राजकुमारी चली आई।

अठारह सप्ताह और बीत गये।

अलाउद्दीन के गुप्तचर ने आकर सुलतान को कोर्निस किया।

सुलतान ने पूछा "क्या राजकुमारी रत्नवती किला देने को तैयार हैं।"

"नहीं, खुदावन्द, वहाँ किसी तरकीब से रसद पहुँच गई है। किला नौ महीने और पड़ा रहने पर भी हाथ न आयेगा। फिर पानी अब किसी तालाब में नहीं है।"

"और क्या खबर है?"

"रत्नसिंह ने मालवे तक शाही सेना को खदेड़ दिया है।"

अलाउद्दीन हतबुद्धि हो गया और महाराव से सन्धि का प्रस्ताव किया।

❀ ❀ ❀ ❀

सुन्दर प्रभात था। राजकुमारी ने दुर्ग-प्राचीर पर खड़ी होकर देखा, शाही सेना डेरे-डंडे उखाड़ कर जारही है। और महाराव रत्नसिंह अपने सूर्यमुखी झंडे को फहराते विजयी राजपूतों के साथ दुर्ग की ओर आ रहे हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

मङ्गल-कलश सजे थे। बाजे बज रहे थे; दुर्ग में प्रत्येक वीर को पुरस्कार मिल रहा था। मलिक काफूर महाराव की बग़ल में बैठे थे। महाराव ने कहा—खाँ साहिब, क़िले में मेरी ग़ैर-हाज़री में आपको तकलीफ़ और असुविधायें हुई होंगी, इसके लिये आप माफ़ करेंगे। युद्ध के नियम सख्त होते हैं, फिर क़िले पर भारी मुसीबत आई थी, लड़की अकेली थी, जो बन सका किया।

काफूर ने कहा—महाराज, राजकुमारी तो पूजने लायक हैं, यह इन्सान नहीं, फ़रिश्ता हैं। मैं ताज़िन्दगी इनकी मिहरबानी नहीं भूल सकता।

महाराव ने एक बहुमूल्य सरपेच उन्हें दिया, और पान का बीड़ा देकर बिदा किया।

दुर्ग में धौंसा बज रहा था।

कुम्भा की तलवार

१

चित्तौड़ के अजेय दुर्ग का पतन हो चुका था। महाराणा उदयसिंह लापता थे और वीर जयमल फत्ता ने प्राणों की आहुति दे दी थी। क़िले पर दख़ल कर सम्राट् अकबर उसे एक अधिकारी को सौंप दिल्ली लौट आये थे। अधिकारी को आज्ञा थी कि आस-पास के सभी क़िलों को आधीन कर ले और उनके अधिपतियों को जो राणा के सरदार थे या तो अपने आधीन कर ले या युद्ध में पराजित करले। इस कार्य के लिए एक भारी सेना वहाँ छोड़ भी दी गई थी।

रणथम्भोर का दुर्ग अजेय था। वह एक दुर्गम विशाल चट्टान पर निर्भयता से खड़ा था। दुर्ग पर चढ़ने को मीलों तक कहीं भी सुविधा न थी। केवल एक ढालू नाले द्वारा

जो मुड़कर इधर उधर बहुत टेढ़ा हो रहा था. एक भयानक रास्ता क़िले तक गया हुआ था। इसके चारों ओर दुर्गम अरावली की अनगिनत श्रेणियाँ थीं।

इसकी रक्षा राव सुर्जन हाड़ा की नवविधवा पत्नी कर रही थी। इस युद्ध में हाड़ा सर्दार पुत्र सहित काम आये थे। क़िला घेर लिया गया था। सिंहनी रानी पति और पुत्र का घाव छिपाये यत्न से क़िले की रक्षा में तत्पर थी। इस समय मेवाड़ में मुग़ल सिपाही ही सिपाही नज़र आते थे। इस क़िले में महाराणा कुम्भा की वह रत्न-जटित तलवार धरोहर के तौर पर रक्खी थी जो उन्हें मालवराज की विजय में भेंट दी गई थी। सिंह विक्रम सुर्जन के पूर्वजों ने सैकड़ों बार प्राण देकर भी इस तलवार की रक्षा की थी।

परिस्थिति गम्भीर होती जा रही थी क्योंकि आक्रमण बराबर जारी थे। खाद्य-सामग्री और युद्ध-सामग्री बराबर क्षय हो रही थी और शत्रुओं के हटने की कोई आशा न थी। मुग़ल सेनापति क़िले की चाबियाँ माँग चुका था जिसे देने से रानी ने दर्प से इन्कार कर दिया था। उसके पूर्वजों पर जो भार था वह इस समय इस असहाय दुःखिता वीर बाला पर था जिसे इस समय कहीं से कोई भी सहारा न था और मोर्चा प्रबल प्रतापी अकबर से लेना था।

२

वह किले के पूर्वीय बुर्ज की खिड़की में मलिन वस्त्र पहिने बैठी गौर से मुग़लों के लिड्डीदल को देख रही थी। मनुष्यों की चिल्लाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, इधर उधर डेरे गाड़ने की खटपट की आवाज़ यहाँ भी उसके कानों में पड़ रही थी। उसी के पास उसकी पुत्री बैठी किसी राजपूत सिपाही का फटा वस्त्र सी रही थी।

रानी ने भान मन से कहा— बेटी, अब नहीं। अब एक क्षण भी नहीं चल सकता, मुझे न अपनी परवा है न तेरी। और न किसी और वीर पुरुष या स्त्री की। हम सब सच्चे राजपूत की भाँति भूख और मृत्यु का सामना कर सकते हैं परन्तु वह तलवार जो मेरे श्वसुर के पड़दादा ने अपनी पाग पर रखकर राणा कुम्भा से ग्रहण की थी और उसकी रक्षा का वचन दिया था उसका क्या होगा? उसकी रक्षा किस भाँति की जायेगी? क्या वह मुग़ल बादशाह के क़दमों में पेश की जाने को दिल्ली भेज दी जायगी? वह विजयी महाराणा कुम्भा की तलवार, जिसे उन्होंने मालवे के प्रतापी सुलतान महमूदशाह खिलजी से बलपूर्वक हरण किया था! रानी की दृष्टि ऊपर उठ कर किले की एक बुर्जी पर अटक गई! वह अत्यन्त गम्भीर और शोक पूर्ण विचारों में मग्न हो गई।

बालिका ने हाथ का काम रख दिया। वह उठ कर माता के पास आई और माता के मुख पर अपना मुख रख दिया। वह अति सुन्दर मुख था, पर भूख और वेदना के कारण वह गुलाब की सूखी हुई पंखड़ी की भांति शोभाहीन हो गया था। आँखों का सभी रस सूख गया था। उसने करुण कम्पित स्वर में कहा—'हम चालीस भी तो नहीं हैं, माँ फिर हम सब भूख से अधमरे हो रहे हैं। हाय, आज हमें रोटी का एक टुकड़ा भी इतना दुर्लभ है।'

बालिका ने एक सिसकारी भरी और माता से लिपट गई। रानी से सहज गम्भीर स्वर में कहा—'धीरज, बेटी धीरज, यह समय भूख और मृत्यु की चर्चा का नहीं—इस समय हमें उस तलवार की रक्षा का विचार करना चाहिये जो हमारे कुल की प्रतिष्ठा की चीज़ है।'

एकाएक बालिका के मस्तिष्क में कोई विचार उठा। उसने दोनों हाथों से माता का मुख अपनी तरफ़ फेरा। क्षण भर दोनों आँख से आँख मिला कर एक टक एक दूसरे को देखती रहीं। पुत्री की अर्थपूर्ण दृष्टि और कम्पित होठ देख कर उसने कहा—तू क्या सोच रही है लड़की?

'माँ, मैंने तलवार की रक्षा का उपाय सोच लिया है। मुझे साहस करने दो'। इसके बाद उसने माता के कान में झुक कर

कुछ कहा। रानी ने सम्मति नहीं दी परन्तु बालिका ने हठ करके रानी को सहमत कर ही लिया।

३

भयानक रात थी और आकाश पर बदली छाई थी। किले के पृष्ठ भाग की बुर्जी पर चार प्राणी एक दूसरे से सटे खड़े थे। रानी ने कहा—"बेटी, अब हम न मिलेंगे?"

"नहीं माँ, हम मिलेंगे, आनन्द और सुख के अक्षय स्थल स्वर्ग में शीघ्र ही।" उसने फ़सील पर लटकती हुई रस्सी अपने कोमल हाथों में पकड़ी। एक वृद्ध योद्धा ने कम्पित स्वर में कहा,

'बाईजीराज, मुजरा।'

'ठाकराँ, माता की प्रतिष्ठा आपके हाथ है'।

बालिका साहस पूर्वक रस्सी पर से उतरने लगी और उस अन्धकार में लीन हो गई।

❀ ❀ ❀ ❀

दूसरे दिन प्रातःकाल एक बालक धूल और कालख से अत्यन्त गन्दा, फटे वस्त्र पहने, नंगे पैर, सिर पर घास का एक बड़ा-सा गट्ठा लिये, लड़खड़ाती चाल से मुग़ल शिविर में प्रवेश कर रहा था। एक प्रहरी ने कड़क कर पूछा—

'कहाँ जाता है बदज़ात?'

'सरकार, मुहम्मद इब्राहीम का नौकर हूँ, उनके घोड़े की घास ले जा रहा हूँ।'

उस अनन्त लश्कर में कौन मुहम्मद इब्राहीम है, यह प्रहरी क्या जाने ? उसने पीनक में ऊँघते हुए कहा—'जा, मर।'

यवन-दल पड़ा सो रहा था। बहुत कम लोग जाग रहे थे। बालक को और भी एक दो बार टोका गया और उसने यही उत्तर दिया। वह मुग़ल-सेना को चीरता चला गया। एक चौकी पर सिपाही ने चुड़क कर कहा—

'इधर आ बे, घास इधर ला।'

'बहुत अच्छा, सरकार।'

'कै पैसे ?'

हुजूर गरीब लड़का हूँ, जो मर्जी हो दे दें। बालक ने घास सामने फेंक दी। उसमें से रस्सी खोली। खुरपी और रस्सी लपेट कर हाथ में ली। और फिर थक कर वहीं बैठ गया। सिपाही ने कुछ नर्म होकर कहा—

'इतनी जल्दी घर से क्यों निकला ?'

'सरकार भूखा हूँ, पेट सब कराता है।'

'नौकरी करेगा ?'

'करूँगा मालिक, पर मेरी बुढ़िया माँ, तीन दिन से भूखी बीमार पड़ी है, उसे कुछ खाना.....।'

'ले, सिपाही ने थोड़े पैसे निकाल कर फेंक दिये। हमारा नाम ताजरखाँ है, नौकरी करना हो तो इधर आ जाना।'

'बहुत अच्छा सरकार, पर कोई रोकेगा ?'

सिपाही ने एक पुर्ज़ा लिख कर उसे दिया और कहा—'जो तुझे रोके उसे यह दिखा देना।'

बालक सलाम करके धीरे धीरे आगे बढ़ा। शिविर की समाप्ति पर प्रहरी ने उसे टोका, पर वह पुर्ज़ा देखकर सन्तुष्ट हो गया।

बालक ने सकुशल यवन-शिविर पार किया। वह कुछ दूर बढ़ा चला गया। इसके बाद वह एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़ गया। और वहाँ से सूखी लकड़ी बटोर कर आग जला दी।

रानी ने उस आग को देखकर सन्तुष्ट होकर कहा—'लड़की सुरक्षित यवन-शिविर को पार कर गई। अब विलम्ब का काम नहीं। ठाकराँ, अब तुम सब कै जने हो ?'

'सब मिलाकर छत्तीस हैं, महारानी।'

'अच्छा, मैं सबको नौकरी से मुक्त करती हूँ, जिसकी इच्छा हो यवन सेनापति को आत्मार्पण कर दे।'

'माता केसर का कड़ाह भरा जाय, हम साखा करेंगे।'

'ठाकराँ, जीते जी प्रतिष्ठा न जाने पावे.'

'ऐसा ही होगा, माता।'

केसर का भारी कड़ाह भरा था। प्रत्येक योद्धा अपना २

अँगरखा उसमें रंग रंग कर पहन रहा था। वह स्वेच्छा सेना थी। रानी ने कहा—'तो तुम तैयार हो ?'

'हाँ, माँ।'

"अच्छा, ज्यों ही हम अपना कार्य समाप्त कर लें, तुम क़िले का फाटक खोल शत्रुओं पर टूट पड़ना।"

"जो आज्ञा।"

"और जब तक एक भी जीवित रहे यवन क़िले के फाटक को न छू सकें।"

"जो आज्ञा।"

"तुम कुल कितने हो ?"

"सब छत्तीस हैं।"

'तुम छत्तीस हजार हो, जुझार ठाकराँ!' रानी महलों में चल दी। एक बार छत्तीसों कण्ठों ने गर्ज कर कहा—

"जय रानी माता की।"

प्रत्येक वीर नंगी तलवार लिए दृढ़ निश्चय कर पंक्तिबद्ध खड़ा था। राजमहल में भीषण धड़ाका हुआ और क्षण भर ही में आग की लपटें आकाश को छूने लग गईं। यवन शिविर में हलचल मच गई। छत्तीसों वीर नंगी तलवार लेकर आगे बढ़े। वे सब भूखों मर रहे थे। उनकी आँखें निकली पड़ती थीं। फिर भी वे लौह पुरुष की भाँति दृढ़ थे। उनका कर्तव्य पूरा हो चुका

था। उन्होंने क़िले का फाटक खोल दिया और देखते ही देखते जूझ मरे।

बालक के पैर लोहू-लुहान हो रहे थे। पग-पग पर वह लड़-खड़ा रहा था। धरती तत्ते तवे की भाँति तप रही थी। वह भूख प्यास से अधमरा हो रहा था। उसके वस्त्र चिथड़े हो गये थे। उनमें काँटे और लता-गुल्मों ने लिपट कर उसका अद्भुत स्वरूप बना दिया था। वह किसी भाँति साहस करके दुर्गम दुरूह घाटी में बढ़ा चला जा रहा था। सामने की टेकड़ी पर जो बटिया दीख रही थी उसी पर चढ़ने का उसका इरादा था।

टेकड़ी पर एक भील धनुष पर बाण चढ़ाये इसी ओर देख रहा था। उसने ललकार कर बालक से कहा--वहीं खड़ा रह। यहाँ आने का क्या काम है? उसने बाण बालक की तरफ़ साधा। बालक ने हाथ के संकेत से उसे रोका—और भरपूर शक्ति लगा-कर पुकारा 'राणा जी' और वह मूर्छित हो वहीं गिर पड़ा।

तुरन्त दो बलिष्ठ पुरुष कुटिया से निकल आये। उनके हाथ में तलवारें थीं। दोनों व्यक्तियों ने नीचे उतर कर बालक को उठाया। बालक ने जल का संकेत किया। जल पीकर उसने अपने वस्त्रों की ओर संकेत किया। राणा ने वस्त्र उठा कर देखा वह बालक नहीं बालिका थी। उसकी छाती पर गूदड़ से लपेटी हुई वह तलवार थी जो गूदड़ हटाते ही सूर्य की भाँति चमकने लगी।

बालिका ने भग्न स्वर में कहा—महाराणा की जय हो, मैं रणथम्भोर के दुर्गपति सुर्जन हाड़ा की पुत्री हूँ। महाराज—चित्तौड़ पतन के बाद रणथम्भोर भी घेर लिया गया। पिता और भाई तो चितौड़ ही में काम आए थे। हम लोगों ने बहुत चेष्टा की, पर महाराज, हम भूखों मरने लगे। अन्त में हमारा प्यारा रणथम्भोर.....बालिका बोल न सकी। उसके होंठ फड़क कर रह गये। बालिका के प्राण निकल गये। राणा के हाथ से तलवार छूट गई। बालिका की निर्जीव देह गोद में लेकर वे बालक की भाँति रोने लगे।

वीर-विजय

"चुप रहो मुकन्ददास ! जहाँपनाह के रूबरू तुम्हारा इस क़दर जोश में आना गुस्ताख़ी है। महाराज जसवन्तसिंह ख़ुद ही सब क़िस्सा बयान कर रहे हैं"—दिलेरख़ाँ सेनापति ने डपट कर कहा।

"सच बात कहने में गुस्ताख़ी क्या है ख़ाँ साहब ? वे लोग सचमुच ख़ास शाही शरीर-रक्षक थे। मैं....." मुकन्ददास जोश में आकर और कुछ कहना ही चाहते थे। बादशाह औरंगजेब के ग़ुस्से और त्योरियों के दम-दम पर चढ़ाव की उन्हें कुछ भी परवाह नहीं थी। किन्तु महाराज का संकेत पाकर वे चुप हो गये और हट कर खड़े हो गये। बादशाह ने लरजती ज़बान से कहा।

"महाराज ! आपके आदमी ऐसे ही बेअदब और बेतमीज़ होते हैं ?"

महाराज कुछ कहा ही चाहते थे कि मुकन्ददास ने कड़क कर कहा—

"बेअदब विश्वासघातकों और बंचकों से कहीं अच्छे होते हैं जहाँपनाह !"

महाराज ने रुष्ट होकर फिर मुकन्ददास को चुप रहने का आदेश दिया, और आप विनीत भाव से बोले—

"जहाँपनाह ! इनकी गुस्ताख़ी माफ़ फ़रमाइयेगा। यह जनाब के मिज़ाज से वाक़िफ़ नहीं हैं, दूसरे यह अत्यन्त बहादुर और दिले रहैं। इसी गुण के कारण मैं इनके उद्धत व्यवहार को देखा अनदेखा कर जाता हूँ। रात ही की बात लीजिये जिसका ज़िक्र चल रहा था, दो मिनट ये और न आते तो मेरा काम तमाम हो चुका था। जिस वक्त उन लुटेरों ने मेरे ख़िदमतगार पर तलवार का वार किया, तभी इन्होंने पहुँच कर उनके दो टुकड़े कर डाले और मेरी जान बच गई। और भी कितनी ही बार यह मेरी जान बचा चुके हैं। हुजूर ! मेरी तरफ़ देख कर इन्हें माफ़ फ़र्मावें।"

"आपका मुझे बहुत लिहाज है महाराज ! इसी से मैं इन्हें माफ़ करता हूँ। मगर बहादुर होना ही उजड्डता का बाइस नहीं। मेरी ख़िदमत में भी एक से एक बढ़कर बहादुर हैं, ताहम वे नाशाइस्ता नहीं।"

मुकन्ददास से चुप न रहा गया, उसने दर्प से कहा—

"सम्भव है दिल्ली में बहादुरों की खेती होती हो । पर राजपूत की वीरता को कसौटी पर कसे बिना किसी को बहादुरी का दर्जा देना न्याय नहीं है—हुजूर !"

बादशाह ने त्योरियाँ बदल कर मुकन्ददास की ओर देखा और कोई होता तो उस मर्म-भेदिनी दृष्टि को देख काँप जाता। परन्तु मुकन्ददास ने निर्भयता से कहा—

'राजपूत की वीरता को चाहे जब कसौटी पर कस लीजियेगा।'

"कसूँगा-ज़रूर कसूँगा ! मुकन्ददास, बोलो किस तरह राज़ी हो ?" बादशाह की वाणी में भयङ्करता थी। महाराज सुनकर घबराये। किन्तु मुकन्ददास ने बादशाह की आँख से आँख मिला कर कहा—

"सब तरह"

"सब तरह !"

"जी हाँ सब तरह, राजपूत सिंह होते हैं, गीदड़ नहीं ।"

"अच्छा तो शेर का शेर से ही मुक़ाबिला हो। दिलेरखाँ ! परसों शाम को चार बजे मुकन्ददास शेर से लड़ेगा, उसका बन्दोबस्त करो ।"

यह कह बादशाह ने मुस्करा कर मुकन्ददास की ओर देखा। वह मुस्कराहट तूफ़ान की तरह भयङ्कर थी। महाराज बड़े चिन्तित हुए; किन्तु मुकन्ददास ने धीरज से कहा—

"मंजूर"

"मंजूर है न ! अच्छी बात है, पर देखो बिना हर्बा हथियार लड़ना पड़ेगा, ख़बरदार !"

मुकन्ददास क्षण भर स्तम्भित खड़े रहे, उनकी आँखों से आग बरसने लगी, चेहरा लाल हो गया, हाथों की मुट्ठियाँ बन्द हो गईं, उन्होंने धरती पर पैर पटक कर कहा—

"मंजूर है—यह भी मंजूर है। राजपूत मुग़ल नहीं हैं, वह राजपूत हैं—राजपूत सिंह होते हैं।" मुकन्ददास अत्यन्त उत्तेजित हो गये। महाराज से अब न रहा गया। उन्होंने खड़े होकर कहा—"हुजूर....." बादशाह ने बीच में ही बात काट कर कहा—"बस महाराज, अब आप इस मामले में कुछ न कहिये, यह खेल मुकन्ददास ने खुद पसन्द किया है।"

किन्तु महाराज फिर बोले—"किन्तु....." मुकन्ददास ने महाराज की बात काट कर कहा, "महाराज ! आप शान्त हूजिये। राजपूत आपके नाम को न डुबोएगा, मुकन्ददास निःशस्त्र ही अब सिंह से लड़ेगा, निश्चय लड़ेगा। पर बादशाह सलामत से मेरी एक प्रार्थना है।"

बादशाह ने जल्दी से कहा—"कहो मुकन्ददास तुम्हारी अर्ज़ी सुनी जायगी।"

"हुजूर ! सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दें ताकि सब प्रजा इस राजपूत की परीक्षा देख ले।"

बादशाह ने गद्दी से उठते उठते कहा—

"मंजूर है, तुम्हारी प्रार्थना मंजूर है। जब तुम ने मेरी बात मंजूर कर ली है तो मुझे भी तुम्हारी प्रार्थना मंजूर है।" यह कह कर वे मुस्कराते हुए महल को चल दिये। पाठक, समझे! इस मुस्कराहट का अर्थ! नहीं समझे तो समझ लीजिये—भयङ्कर शत्रु मुकन्ददास जिस ने उसका षड्यन्त्र व्यर्थ करके उसके भेजे हुए गुप्त हत्यारों के हाथ से महाराज जसवन्तसिंह के प्राण बचा लिये थे, उसने अपनी मौत आप ही बुलाई है, परसों खेल ही खेल में भूखा शेर उसकी बोटियाँ चबा जाएगा!!

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चार बजने में अब देर नहीं है, क़िले के सामने का मैदान खचाखच भर रहा है। तिल धरने को जगह नहीं है। छोटे और बड़े सब पुरुष इस अद्भुत और ख़तरनाक परीक्षा को देखने आये हैं, अर्ध चन्द्राकार बैठकें बनी हैं। जिनपर अमीर उमराव से लेकर साधारण नागरिक तक के लिए निर्दिष्ट स्थान है। सामने बादशाह सलामत के लिये सुनहरी कारचोबी के काम का शामयाना टँगा है। बादशाह के आने का समय हो रहा है। लोग उत्कण्ठित भाव से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैदान में मजबूत लोहे के सीख़चों के पिंजरे में एक भीमकाय शेर टहल रहा है। यह जङ्गल का राजा इतने बड़े जनरव के बीच में अपने को देख कर बराबर छलाँग भरता है। जब कभी वह मुँह फुला कर जम्भाई लेता है तो उसके दीर्घ नोकीले दाँतों को देख

कर कलेजा दहल उठता है। कभी कभी वह ऐसेविकट स्वर से दहाड़ता है कि जनसमुदाय दहल जाता है। इसकी कोख कमर में घुस गई है, अवश्य ही यह भूखा है, सामने इतनी भीड़ देख कर पूँछ मरोड़ कर कभी गरजता है, छलाँग भरता है। पर सीखचों से विवश रह जाता है।

इसी भयङ्कर पशु से खाली हाथ मुकन्ददास को लड़ना है, कहाँ मनुष्य, कहाँ यह बर्बर पशु। समस्त जनसमाज, बादशाह के इस अन्याय का दारुण परिणाम देखने को भयभीत हृदय से बैठा है।

अचानक गगन-भेदी तुरही की आवाज़ से दिशाएँ गूँज उठीं। नक़ीब ने चिल्ला कर कहा "अदब-अदब"। बस एकदम जनरव का तूफ़ान थम गया। सब निश्चल, नीरव, स्थिर हो बैठे, बादशाह सलामत भी आ विराजे। आते ही पूछा--

"महाराज जसवन्तसिंह कहाँ हैं ?"

"हुजूर, तबियत नासाज़ होने से वे इस वक्त क़दम बोसी न हासिल कर सके"--बीकानेर के राजा श्यामसिंह ने खुशामद से कहा।

बादशाह ने हँस कर कहा--

"वे आते तो अपने शेर की बहादुरी अपनी आँखों से देख लेते, ख़ैर मुकन्ददास कहाँ हैं ? अब देर क्यों ?"

बादशाह की बात ख़तम भी न हुई थी कि एक गम्भीर नाद से मंडप गूँज उठा, आवाज़ आई—"राजपूत तैयार है।"

एकदम सब की नज़र इस आवाज़ की तरफ़ उठ गई—यह क्या वही मुकन्ददास हैं? आज उनकी ओर देखते डर लगता है। मुकन्ददास सचमुच आज ऐसे भीम वेष में आये हैं कि वीर से वीर भी उसे देख कर दहल जाय।

सिर से पैर तक रक्त वर्ण वस्त्र से शरीर आच्छादित है। क्रोध से मुख भी लाल हो रहा है। आँखें सिन्दूरिया हो रही हैं, मानो मशाल जला दी हो, नाभि पर्यन्त लटकती दाड़ी को बीच से चीर कर कानों से बाँध दिया है। वस्त्रों में से उनका गठीला शरीर फूटा पड़ता है, वक्षःस्थल पर कृष्ण मृगचर्म बँध रहा है। पैरों में भारी जूता है। और सिर पर रक्त वर्ण की बड़ी पगड़ी बँध रही है। इस समय इनका भीमकाय शरीर साक्षात् रौद्र मूर्ति बन रहा है। बादशाह इन्हें देखते ही आतङ्क में आ गया। कुछ ठहर उसने अपनी आँखें दूर तक फैले जन-समूह पर, फिर मैदान में बद्ध सिंह पर डालीं। मानों वे यह जाँच रहे थे कि मुकन्ददास प्रबल है या बन-पशु।

मुकन्ददास गम्भीरता-पूर्वक धीरे २ मञ्च से उतरकर मैदान में सिंह के पिञ्जरे की ओर अग्रसर हुए, हज़ारों नेत्र उन पर पड़ने लगे, असंख्य हृदय उन्हें आशीर्वाद देने और उनके प्राण-रक्षा की कामना करने लगे। ज्योंही वीर मुकुन्ददास सिंह के

पिंजरे के पास पहुँच कर हाथों में चमड़े के दस्ताने पहनने लगे उस समय वह सिंह बहुत कूद फाँद से थककर चुपचाप लेट गया था, पर मुकन्ददास साहस करके पिंजरे में घुस गये। सारे समूह में कोलाहल मच गया। अभी एक पल में जो भयानक दृश्य होने वाला था उसे देखने को सभी उद्विग्न हो उठे। पिंजरे में घुसते ही मुकन्ददास ने गर्ज कर कहा—

"ओ मियाँ के शेर! इधर आ, और महाराज जसवन्तसिंह के शेर का मुकाबला कर"।

आवाज़ दिशाओं में गूँज उठी। वह बन-पशु मुकन्ददास को देखकर प्रथम गुर्राने लगा। फिर अपने स्वभावसिद्ध आक्रमण के लिये पञ्जों के बल धरती पर बैठ कर लपका, पर जब भीम मूर्ति वीर ने ललकार कर खम ठोंका तो न जाने वह क्यों एक तरफ़ पिंजरे में चिपक बैठा।

समस्त जन-समूह के साथ बादशाह भी इस आश्चर्य व्यापार को देख रहे थे। कैसा चमत्कार है, वीर राजपूत सिंह को खदेड़ता और ललकारता पीछे पीछे जाता है। पर सिंह गुर्रा कर दाँत निकाल कर कोने में छिप बैठता है। बड़ी देर के बाद मुकन्ददास ने पिंजरे से बाहर निकल कर भीम गर्जन से कहा—"मियां का शेर दुम दबा कर भागता है। राजपूत सिंह ऐसे गीदड़ का शिकार नहीं करते"। यह कह कर मुकन्ददास ठट्ठा मार कर हँस पड़ा।

बादशाह का चेहरा उतर गया, उन्होंने दिलेरख़ाँ सेनापति को संकेत किया। बादशाह की सम्मति पाकर दिलेरख़ाँ ने कहा—"ऊपर आ जाओ मुकन्ददास तुम्हारी परीक्षा हो चुकी, तुम उत्तीर्ण हुए। बादशाह सलामत तुम से बहुत ख़ुश हैं।"

"राजपूत नट या भाट नहीं होते जो किसी को ख़ुश करने के लिए नाटक दिखाते फिरें।" मुकन्ददास ने क्रोध में लाल होकर घृणा से कहा और ऊपर आकर अपने स्थान पर बैठ गये।

बादशाह गुस्से से होंठ चबा रहे थे। पर अवसर बुरा देख कर झेंप भी बहुत रहे थे, अन्त में बादशाह ने मुस्कराहट मुख पर लाकर कहा—

"बहादुर! तू सचमुच शेर है, मैं तुझ पर खुश हूँ, आज से तेरा नाम "नाहरख़ाँ" हुआ।"

और कोई होता तो बादशाह की इस कृपा पर झुक कर सात बार कोर्निश करता। पर वीर मुकन्ददास ने अवहेलना से तनिक हँस दिया और कहा—

"बड़ी बात हुई, बादशाह राजपूत को पहचान गये" पर बादशाह यह सुनने को बैठे न रहे, उनकी तबियत नासाज़ हो गई थी। वे उठ कर चल दिये। भीड़ भी छँट गई। डेरे पर आते ही, महाराज ने विजयी वीर को छाती से लगा लिया।

❀ ❀ ❀

मन्दिर का रखवाला

ओड़से के विशाल चतुर्भुज के मन्दिर के भीतरी प्राङ्गण में कुछ वीर पुरुष बैठे थे। फाटक के भारी भारी किवाड़ बन्द थे और द्वार पर पहरे लगे थे। किसी भी व्यक्ति को भीतर आने की आज्ञा न थी।

ओड़छे में बादशाह आलमगीर के सेनापति रणदूलहखाँ आकर ठहरे हुए थे। उन्होंने रियासत का प्रबन्ध हाल ही में अपने हाथों में लिया था। ओड़छे के वीर राना चम्पतराय के वीर-गति प्राप्त होने के बाद उनका अति अल्पवयस युवक पुत्र अज्ञातवास कर रहा था। फलतः ओड़छा शाही अमलदारी में था।

रणदूलहखाँ की आज्ञा हुई थी कि आज तीसरे पहर चतुर्भुज जी का मन्दिर तोड़ कर उसके स्थान पर एक मस्जिद बना दी जाय।

नगर में इस खबर से बड़ी बेचैनी फैली हुई थी। लोग दुःख और क्रोध में भरे थे परन्तु शाही सेना के निर्दय अत्याचार का प्रतिवाद करने की शक्ति उनमें न थी। वे अपना शोक मन ही में दबाये लहू का घूँट पी रहे थे।

इस मन्दिर में जो वीर एकत्रित थे, उनके बीचों-बीच एक तेजस्वी साधु मूर्ति थी। इनके प्रशान्त और तेजस्वी मुख पर एक अलौकिक प्रभा थी, वे थे 'प्राणनाथ प्रभु'; ये बुन्देलखण्ड के एक महाप्रतापी और महामान्य देशभक्त साधु एवं चमत्कारिक पुरुष थे। शेष व्यक्ति ओड़छे के प्रमुख सरदार और प्रधान धनपति थे। यह इनकी अत्यन्त गोपनीय सभा थी।

ओड़छे के सभी मन्दिर ढहा दिये गये थे। पर सब को आशा थी कि यह मन्दिर न ढहाया जायगा। पर जब यह खबर लोगों ने सुनी तो उन पर वज्रपात हुआ। मन्दिर की रक्षा का कुछ भी उपाय न था। सूर्योदय ही से झुण्ड के झुण्ड नागरिक चतुर्भुज के अन्तिम दर्शन करने के लिये एकत्रित होने लगे थे। सारे नगर में दुःख का रोना, शोक की ध्वनि और आत्म-निन्दा के वाक्य सुनाई दे रहे थे।

उस दिन नगरवासियों ने अन्नजल त्याग दिया था।

लोगों में छिपे छिपे यह चर्चा भी चल रही थी कि 'प्राणनाथ प्रभु' आ गये हैं। इस खबर से लोगों के हृदयों में आशा का संचार हो रहा था।

परन्तु मन्दिर के पट प्रातःकाल ही से बन्द थे और आज चतुर्भुज भगवान् को भोग नहीं लगा था।

यद्यपि लोगों को यह गुमान भी न था कि प्राणनाथ प्रभु भीतर बैठे परामर्श कर रहे हैं, फिर भी झुण्ड के झुण्ड लोग मन्दिर के चारों ओर खड़े थे।

भीतर जो लोग एकत्रित थे उनमें से एक ने कहा—

'देखिये अब मामला यहाँ तक पहुँच गया है कि हमें कुछ न कुछ कर ही डालना चाहिये। यह व्यक्ति बड़ा डीलडौल का, बदसूरत और भयानक चेष्टा वाला था। उसकी आकृति बाज़ पक्षी के समान थी। उसकी आँखें गहरी और डरावनी थीं। उसके शरीर पर युद्ध के पूरे सामान थे।

जो लोग वहाँ बैठे थे उनके चेहरे क्रोध से तमतमा रहे थे। उनपर दृष्टि डालकर उसने भयानक दृष्टि से सब को घूरते हुए कहा—

"सरदारो! क्या बुन्देलखण्ड हम बुन्देलों का नहीं है? और यह मन्दिर क्या स्वर्गीय राजा चम्पतराय की विजय कामनाओं का केन्द्र नहीं रहा? क्या आप भूल गये कि उस वीर ने विजयों पर विजय करके किस प्रकार इसकी देहली पर मस्तक टेका था। वे भाग्यवान् तो वीर गति को प्राप्त हुए और हम उनके दर्बारी और सर्दार हैं सो क्या इसलिए कि चुपचाप उनकी दी हुई जागीर को खाते रहें! क्या हमने कभी यह भी विचारा है कि वह हमारी पीढ़ियों

से चली आती हुई शक्ति कहाँ चली गई है, और हम उसे खोकर किस उद्देश्य से जी रहे हैं और जागीर भोग रहे हैं ?"

श्रोतागण सिर नीचा किये चुप बैठे थे। उन्होंने फिर कहा—"और आपको मालूम है कि आपके, हमारे, ओड़छे के और समस्त बुन्देल-खण्ड के सिर पर लात मार कर जो अधिपति बन कर आये हैं ये कौन हैं ? मुझे कहते घृणा होती है । वे न उच्च-कुलीन हैं और न कोई सज्जन या वीर पुरुष हैं । वे एक पतित और दुष्ट प्रकृति के व्यक्ति है, परन्तु उनकी विशेषता यही है कि उनकी पुत्री को शाही ख़िदमत बजा लाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। बस ! यही उनकी योग्यता है। ये सारङ्गी बजाने का काम करते थे । समझे आप ! सारङ्गी बजाने का। आप क्या कहते हैं, क्या आप लोग उस अधम पुरुष की प्रजा बन कर रहेंगे ?"

"सरदारो !" उसने अपने लोहे के दस्ताने पहने हुए एक हाथ को दूसरे पर रखते हुए कहा—"इस कमीने आदमी के आधीन —जो न प्रतिष्ठित है और न योग्य, किन्तु बादशाह की कृपा से वह हमें अपने स्वेच्छाचार के ज़ोर करना चाहता है—क्या हमें सब सहते रहना उचित है ? इस गन्दे घास-फूस को क्या हम उखाड़ कर न फेंक दें—और अपना मार्ग साफ़ न करें। सज्जनो ! मैं आप सब से पूछता हूँ, आपका क्या उत्तर है ?"

एक स्वर से सब चिल्ला उठे—'अवश्य, भले ही हमें प्राणों की बाजी लगानी पड़े।" प्रत्येक पुरुष क्रोध और आवेश में बोल रहा था और गुम्बज में उनकी ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी। एक-मात्र प्राणनाथ प्रभु शान्त बैठे थे।

अब वे बोले। उन्हें बोलने का उपक्रम करते देख सभी चुप हो गये। प्राणनाथ ने हँस कर कहा—

"यह सब तो ठीक है, पर म्याऊँ का ठौर कौन पकड़ेगा? कहो, किसमें इतना साहस है?"

सर्वत्र सन्नाटा हो गया। इस मण्डली में एक कोने में एक अल्प-वयस्क बालक बैठा था। यह अपरिचित एवं विदेशी था। इसे प्राणनाथ प्रभु की सिफ़ारिश पर इस गुप्त सभा में सम्मिलित किया गया था।

उसने धीरे से खड़े होकर मुस्कारा कर कहा—

"यदि प्रभु का हुक्म हो तो यह सेवा यह तुच्छ सेवक करेगा।"

प्राणनाथ प्रभु हँस दिये। सभा ने विस्मित होकर देखा—यह अद्भुत और सुन्दर मृदुल बालक कौन है?

एक व्यक्ति ने झरोखे में से झाँक कर देखा और बिल्ला कर कहा—"देखो वह आ रहा है।"

सब लोगों ने झरोखे में से देखा—एक दल सवारों का हथियारों से सुसज्जित आ रहा है। एक तुच्छ आदमी बहुमूल्य और भड़कीले वस्त्र पहिने एक अरबी घोड़े पर सवार सबके आगे चला

आ रहा है। एक प्यादा उस रकाब के साथ हुक्का लिए और दूसरा पानदान लिये आगे बढ़ रहा है। उसके पीछे ५०० सवार हथियारों से लैस आ रहे हैं।

इस गर्वीले दल को देख यह छोटी-सी मण्डली दाँत पीसने लगी।

बाहर कोलाहल होने लगा। सहस्रावधि मनुष्य चीत्कार कर उठे।

मन्दिर के सिंह-द्वार पर भारी भारी चोटें पड़ने लगीं। सभी लोग द्वार पर आकर एकत्र हो गये। प्राणनाथ प्रभु ने कहा—

"देखो, सभी लोग संयम में रहना, शीघ्रता न करना। मैं और यह सुन्दर युवक सब कुछ ठीक कर लेंगे। अभी तुम सब लोग भीतर ही रहो।"

यह कहकर प्राणनाथ प्रभु सिंह-द्वार पर आकर बोले—

"तुम लोग कौन हो?"

"मैं सिपहसालार रणदूलहखाँ हूँ, द्वार खोल दो।"

"द्वार खुलवाने का उद्देश्य क्या है?"

"मैं भीतर जाऊँगा।"

"किस लिए?

"मैं बुतशिकन हूँ। मैं मन्दिर को ढहा दूँगा, मूर्ति को तोड़ूँगा।"

"यह काम तुम किसकी आज्ञा से करते हो?"

"अपनी आज्ञा से।"

"और यदि द्वार न खोले जायँ ?"

"तो ज़बर्दस्ती दरवाजा तोड़ दिया जायगा।"

"बल-प्रयोग का प्रयोजन नहीं, मैं द्वार खोलता हूँ।"

इसके बाद प्राणनाथ प्रभु ने फाटक की भारी साँकल पर हाथ डाला—एक भयानक चीत्कार करके द्वार खुल गया। प्राणनाथ प्रभु अपना भगवा परिधान पहने बाहर निकल आये।

तत्क्षण एक प्रचण्ड जयघोष हुआ। सहस्रों नर-नारी चिल्ला उठे—

"प्राणनाथ प्रभु की जय !"

रणदूलहखाँ उस सतेज मूर्ति को आगे बढ़ते देख पीछे हट गया, प्रचण्ड जयघोष ने उसे घबरा दिया। परन्तु तुरन्त उसने साहस सञ्चय करके कहा—

"बाग़ी तू कौन है, और क्यों तूने इतनी भीड़ लगा रक्खी है ?"

प्राणनाथ प्रभु एक शब्द भी न बोले। वे चुपचाप खड़े रहे। रणदूलह ने क्रोध में पागल होकर कहा—

"अरे गुस्ताख, पूछता हूँ और तू जवाब नहीं देता, ठहर, मैं अभी तेरा सिर भुट्टे-सा उड़ाता हूँ।" यह कह और तलवार खींच कर वह आगे बढ़ा।

प्राणनाथ ने वज्रगर्जन करके कहा—

"वहीं खड़ा रह !"

दूसरे ही क्षण मन्दिर में से अनेक वीर निकल कर प्राणनाथ प्रभु के पीछे आ खड़े हुए। उन्होंने तलवारें सूँत लीं।

रणदूलहखाँ ने फिर साहस संग्रह किया। उसने कहा—

"समझ गया। तू प्राणनाथ गोसाईं है, जो तमाम मुल्क में बग़ावत फैलाता फिरता है।"

प्राणनाथ प्रभु बोले नहीं, वज्र दृष्टि से उसे देखते रहे।

रणदूलहखाँ ने फिदाईखाँ फौजदार को हुक्म दिया—

"क्या देखते हो, इस बाग़ी की गरदन एक ही हाथ में उड़ा दो।" परन्तु फिदाईखाँ की हिम्मत न हुई। उसने अपने एक हवलदार से कहा—"हैदरखाँ, तलवार के एक ही हाथ से इस गुसाईं का सिर धड़ से अलग कर।"

रणदूलहखाँ ने जो काम फिदाईखाँ को सौंपा था—फिदाईखाँ ने वह हैदरखाँ को सौंप दिया। यह देख कर प्राणनाथ प्रभु मुस्करा दिये।

उन्हें मुस्कराता देख हैदरखाँ ने एक सिपाही से कहा—

"मुहम्मदखाँ, खाँ साहेब का हुक्म बजा लाओ, और एक ही हाथ में इसका सिर भुट्टे की भाँति उड़ा दो।"

मुहम्मदखाँ ने तपाक से कहा—'वल्लाह, हुजूर की मौजूदगी में मैं एक काफ़िर को क़त्ल करूँ ? मुझसे हरगिज़ यह गुस्ताख़ी

न होगी। जनाब के एक ही हाथ में इस बदनसीब का सिर कला-भुण्डी खा जायगा।"

रणदूलहखाँ यह देखकर कुढ़ गया। पर यह समझ गया कि इस गुसाईं पर हाथ डालना साधारण आदमी का काम नहीं है। उसने होठों को दाँतों से दबाकर तलवार सूँत ली और आगे को बढ़ा।

हज़ारों की संख्या में खड़े नर-नारी विचलित और उत्तेजित हो उठे। प्राणनाथ प्रभु ने फिर गम्भीर गर्जन से कहा—

"खबरदार, सब लोग शांत खड़े रहें।" रणदूलहखाँ थर-थर काँपने लगा। पर उसने आगे बढ़ कर कहा—

"गुसाईं मरने को तैयार हो जा!"

"मूर्ख, मैं अभी नहीं मरूँगा।"

रणदूलह ने तलवार ऊपर को उठाई। प्राणनाथ प्रभु वज्र की भाँति खड़े थे।

अब वह युवक तेजी से मन्दिर के कक्ष से निकला और प्राण-नाथ प्रभु के सामने खड़े होकर महीन किन्तु तीव्र स्वर में बोला—

"खामोश रणदूलहखाँ, तलवार जमीन पर रख दो और इस बुजुर्ग से दस्तबस्ता माँफी माँगो।"

"तू कौन है, तेरी हिम्मत पर आफरीन है, हट जा बच्चे, वरना यह तलवार तेरे खून से ही पहले सुर्ख होगी, क्या तू सिपहसालार रणदूलहखाँ के गुस्से को नहीं जानता?"

युवक जोर से खिलखिला कर हँस पड़ा। इसके बाद उसने अपने सिर की पगड़ी उतार कर फेंक दी। एड़ी तक लटकने वाली सघन काली और घूँघरवाली केश-राशि बिखर गई। उसने दर्प से कहा—

"पीछे हट जा, शाहज़ादी बदरुन्निसा तुझे हुक्म देती है कि अपनी तलवार ज़मीन पर रखकर झटपट इस बुजुर्ग से माफी माँग।"

रणदूलहखाँ का चेहरा पीला पड़ गया। वह थर-थर काँपने लगा। उसने तलवार शाहज़ादी के चरणों पर रख दी और कहा—

"हुजूर गुलाम की गुस्ताख़ी माफ़ फ़र्माई जाय, हुज़ूर को मैं पहिचान..... ।"

"इस तरह तुम डाकू और बदमाशों की तरह शाहनशाह की रिआया पर जुल्म करते हो ?"

"हुजूर..... ।"

"पहिले उस बुजुर्ग से माफी माँग।"

रणदूलहखाँ घुटनों के बल प्राणनाथ प्रभु के चरणों पर गिर गया। प्राणनाथ हँस पड़े और हाथ उठाकर उसे अभय किया।

फिर प्रचण्ड जयघोष हुआ.....

"प्राणनाथ प्रभु की जय !"

प्राणनाथ प्रभु ने कहा—

"रणदूलहखाँ, तुम यदि बादशाह के सच्चे सेवक हो तो तुम्हें

कोई ऐसा काम न करना चाहिये जिस से प्रजा के मन में शाहनशाह के प्रति क्रोध या घृणा उत्पन्न हो। तुम्हारी नमक-हलाली शान गाँठने और अत्याचार करने में नहीं, शाहनशाह के प्रति प्रजा के हृदय में प्रेम पैदा करने में है। कोई राजा बल से देर तक प्रजा पर हुकूमत नहीं कर सकता जब तक कि वह उसका दिल न जीत ले। जाओ भविष्य में ऐसी चेष्टा करना कि शाहनशाह और ईश्वर दोनों की नज़र में तुम गुनहगार न बनो।"

रणदूलहखाँ जल्दी जल्दी शाहज़ादी और प्राणनाथ प्रभु को बार बार सलाम कर अपनी फौज सहित चला गया और उस अतर्कित रीति से मन्दिर की रक्षा होते देख लोग बारम्बार हर्षनाद करने लगे। अब भी ओड़छा के वृद्ध इस तरह मन्दिर के रखवाले की कहानी बड़े चाव से कहा करते हैं।"

दरबार की रात

१

जोधपुर में मुग़ल-ही-मुग़ल दिखाई पड़ते थे। नगर-निवासी घर छोड़ २ कर भाग गये थे। और मुग़लों ने घरों पर अधिकार कर लिया था। प्रातःकाल ही से नगर में चहल-पहल थी। बड़े-बड़े सरदार घोड़ों पर चढ़े इधर उधर दौड़ धूप कर रहे थे। नए-नए अमीर-उमराव बाहर से आये हुए थे। बाज़ारों में भीड़ लग रही थी।

यह वह समय था, जब मारवाड़ में मुसलमानों का अधिकार हो गया था। दिल्ली के तख़्त पर प्रतापी औरंगज़ेब का शासन था। यहाँ नया सूबेदार बदल कर आया था। उसका दरबार होने वाला था। इसमें सभी राजवर्गी पुरुषों को बुलाया गया था, परन्तु हिन्दू सरदारों को हथियार लेकर आना निषिद्ध था।

सड़कों और गलियों में स्त्रियाँ तथा पुरुष जहाँ तहाँ भीड़ की भीड़ खड़े काना-फूसी कर और आते जाते योद्धाओं को देख रहे थे।

मुग़ल-पलटन की एक टुकड़ी कायदे से कवायद करती हुई क़िले की ओर चली गई। किला एक ऊँची दुर्गम पहाड़ी पर स्थित मज़बूत पत्थरों का बना था, और उसका फाटक अभेद्य था।

दरबार का भवन मुग़लों से खचाखच भरा था, परन्तु राठौर-सरदार अभी नहीं आये थे उनकी प्रतीक्षा में दरबार की कार्यवाही अभी स्थगित थी। एक सैनिक अफ़सर ने आकर कहा—"सरदार लोग बड़ी देर कर रहे हैं।" और उसने पहाड़ी की तलहटी तक फैली हुई टेढ़ी, तिरछी सड़क की ओर देखा।

सुनहरी धूप में उसे उनके चमकते हुए चञ्चल घोड़े दिखाई दिये। वे सब धीरे-धीरे बातें करते बढ़े चले आ रहे थे। उनमें से किसी के भी शरीर पर हथियार न थे। उसने दूसरे ही क्षण कहा—"लो वे आ रहे हैं।"

उनमें कुछ उठते हुए युवक थे जिनकी अभी रेखें भीगी थीं। कुछ वृद्ध पुरुष थे, जिनकी विशाल दाढ़ियाँ हवा में फहरा रही थीं। वे बातें करते और सशंक दृष्टि से मुग़लों से भरे किले को देखते हुए बढ़ रहे थे। घोड़े सुनहरी साज से सजे हुए थे, और उनकी पोशाकें रंग-बिरंगी थीं।

नगर-निवासी तलहटी में सड़क के दोनों ओर खड़े उँगली उठा उठाकर प्रत्येक के सम्बन्ध में अपने-अपने मनोगत भाव प्रकट कर रहे थे। एक ने कहा—

"देखो, यह राव करनसी बघेला जा रहे हैं, जिन्होंने रानी माँ

की पीठ पर रहकर उनकी रक्षा की थी, जब वह दिल्ली के घेरे को भेदन करके चली थीं।"

दूसरे ने कहा—"यह ठाकुर बख्तावरसिंह पंचोली हैं, जिन की तलवार पाँच हाथ की होती है। आज यह निहत्थे दुश्मनों के दरबार में जा रहे हैं।"

तीसरे ने चिल्लाकर, अपनी ओर सबको आकर्षित करके कहा—"और उधर देखो, उस सफेद घोड़े पर कानोद के राव राजा प्रतापसिंह हैं जिन्होंने उस दिन खाली हाथों नाहर को चीर डाला था। वाह क्या बाँका जवान है! अभी तो रेखें ही भीजी हैं।"

धीरे-धीरे ये लोग आँखों से ओट हो गये। ऊपर किले तक कोई भी अपरिचित नहीं जा सकता था।

सूर्य पर एक बदली का टुकड़ा आ गया। लोग कानाफूसी करते हुए उस किले को ताक रहे थे। उन रहस्यमयी दीवारों के भीतर क्या हो रहा है, यह जानना दुस्साध्य था।

एक ने कहा—"अभी तो और भी सरदार आवेंगे। मुकुंद-दास खीची—अरे, देखो, वह आ रहे हैं। सिर से पैर तक लाल वेश है। मारवाड़-भर में ऐसा योद्धा नहीं। पर·····देखो-देखो वह बुढ़िया बेवकूफ किधर दौड़ी जा रही है, पागल।"

वह बुढ़िया तीर की भाँति पहाड़ी पर से उतर रही थी, उसके मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। सामने ही सशस्त्र सिपाहियों के झुण्ड के साथ मुकुन्ददास खीची बढ़े चले आ रहे थे। सभी

सशस्त्र थे। मुकुन्ददास स्वयं एक फ़ौलादी बख़्तर पहने और सिर से पैर तक हथियारों से लदे हुए थे।

वह मुकुन्ददास के घोड़े के आगे गिर गई। उसके मुख से निकला—"ठाकराँ, वहाँ किले पर न जाना, वहाँ ख़ून की नदी बह रही है, दग़ा है, दग़ा! मैं आँखों देख कर आई हूँ।"

वह काँप उठी, और दोनों हाथों से उसने आँखें बन्द कर लीं। मुकुन्ददास खींची घोड़ी से कूद पड़े। उन्होंने वृद्धा को हाथ से उठाकर कहा—"बूढ़ी माँ, बात क्या है? तुम्हारा अभिप्राय क्या है? क्या किले में....."

उसने सिर उठाकर भयभीत स्वर में कहा—"महाराज, वहाँ प्रत्येक सरदार बकरे की भाँति हलाल किया जा रहा है। बेचारे वीर करनसिंह बघेला और प्रतापसिंह के सिर धरती में लुढ़क रहे हैं। वहाँ प्रत्येक भाई का लाल धोखे से ज्यों ही वह घोड़े से उतर कर ड्योढ़ी पार करता है, मार डाला जाता है। वे दग़ाबाज, पाजी, कुत्ते तुर्क.....मैंने आँखों देखा है, महाराज, आँखों देखा है।"

क्षण-भर को सन्नाटा छा गया। मुकुन्ददास का सिर नीचे झुक गया, उन्होंने भर्राई आवाज़ में कहा—"उन्होंने बघेला सरदार को मार डाला, और मेरे प्यारे वीर भतीजे को भी, जिसका कङ्कन अभी नहीं खुला!"

वह कूद कर घोड़े पर चढ़ गए। क्रोध से उनका मुख लाल

हो गया। उन्होंने होठ काटकर कहा—"कायरो, पापियो, हत्यारो!" उन्होंने आकाश की ओर मुँह उठाया, और मुट्ठी बाँधकर कहा—"सूर्योदय से प्रथम ही धूल में न मिला दूँ, तो मेरा नाम मुकुन्ददास नहीं।"

उनके प्रत्येक सिपाही ने तलवार सूत ली। मुकुन्ददास ने शांत स्वर में कहा—"इसकी आवश्यकता नहीं है। ठाकराँ, मेरे साथ आओ।" वह घोड़े से उतर पड़े, और अपने साथियों तथा उस स्त्री के साथ गहन वन में विलीन हो गए।

२

वन के अगम्य स्थल पर मुकुन्ददास ने घोड़ों को रुकवा दिया और राजपूतों को चुपचाप बैठने की आज्ञा दी। फिर वह बूढ़ी औरत को एक तरफ ले गए, और कहा—

"माँ, तुमने मेरे प्राण बचाए हैं, अब एक उपकार और करो। अभी तुम चुपचाप घर में बैठना। संध्या होने से पहले ही तुम नगर में यह देखना कि कौन कहाँ ठहरा है। उन मकानों पर चिह्न कर देना, और संध्या होते ही मुझे इसकी सूचना दे देना।"

वह स्त्री चली गई, और मुकुन्ददास गम्भीर चिन्ता में डूब गए।

संध्या हो चली। मुकुन्ददास विचलित भाव से उस वृद्धा की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह धीरे से आई और बैठ गई। वह एकदम

थक गई थी। मुकुन्ददास ने उसे गम्भीर मुद्रा से देखकर कहा—"माता, तुम वह काम कर आईं ? उनका क्या हाल है ?"

"वे वहाँ आनन्द मना रहे हैं, दावत उड़ रही हैं, और नाच-रङ्ग हो रहे हैं। अभागे नगर-निवासियों से जो बच रहे हैं बल-पूर्वक बेगारें ली जा रही हैं। भले घर की बहू-बेटियाँ सुरक्षित नहीं। वे चाहे जिसके घर में घुसकर उनकी लाज लूट रहे हैं। ठाकराँ आज की रात कालरात्रि है।

वह कुछ ठहर गई। उसकी आँखों से आँसू ढरक पड़े। उन्हें दोनों हाथों से पोछ कर उसने कहा—

"वे जिन-जिन घरों में ठहरे हैं मैंने उन पर चिह्न कर दिया है। गलियों में सन्नाटा छा रहा है जो लोग नगर में बचे हैं वे सब लोग चुपचाप द्वार बन्द किये बैठे हैं। शेष सब घर छोड़ कर भाग गए हैं।"

मुकुन्ददास की आँखों से आग निकल रही थी। उन्होंने कहा—"माँ, तुमने बहुत काम किया, अब तुम थोड़ा विश्राम कर लो। आधी रात बीतने पर मेरा काम प्रारम्भ होगा।

आधी रात होने पर मुकुन्ददास ने अपने सब साथियों को चुपचाप तैयार होने का आदेश दिया। वह स्वयं भी घोड़े पर सवार हो गए, और सब धीरे-धीरे उस ऊबड़-खाबड़ पर्वत-पथ को पार करते हुए नगर की ओर चले। वह स्त्री भी उनके साथ थी। नगर में प्रवेश करते ही वह रुकी, उसने कहा—"ठाकराँ, कुछ और चीज़ तो नहीं चाहिए। यह मेरा घर है।"

"हाँ माँ, हमें कुछ मजबूत रस्सियाँ और सूखा फूस चाहिए।"

"फूस तो छप्पर से लेना होगा, रस्सियाँ मैं लाती हूँ। तुम सिपाहियों से कहो, वे छप्पर पर चढ़ जायँ, और उसे उधेड़ लें। कुछ चिन्ता नहीं, मैं ग़रीब तो हूँ पर फिर बनवा लूँगी।"

वह बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए भीतर घुस गई।

मुकुन्ददास ने सिपाहियों को घोड़े से उतरने का आदेश दिया। वह स्वयं भी घोड़े से उतर पड़े। कुछ ही क्षणों में सबने अपने सिर के साफ़े खोल डाले और फूस के गट्ठे बाँध लिए। एक एक रस्सी भी सबके हाथों में थी। उन्होंने जूते भी उतार दिए और निश्शंक नगर में घुस गए। वृद्धा को उन्होंने छुट्टी दी।

रात अन्धेरी थी। जिन घरों पर चिह्न थे उनके द्वारों को उन्होंने खूब कसकर रस्सी से बाँध दिया और उन पर साँकलें चढ़ा दीं ताकि कोई भी बाहर न निकल सके। इसके बाद थोड़ा-थोड़ा-सा फूस द्वार पर रख दिया। देखते-देखते समस्त चिह्नित द्वार रस्सियों से बाँध और फूस से ढाँप दिए गए। फिर मुकुन्ददास ने एक संकेत किया, और एकबारगी ही समस्त फूस में आग लगा दी गई। तदनंतर सब राजपूत अपने २ घोड़ों पर सवार होकर, अलग होकर खड़े हो गए। सबने तलवारें सूँत लीं। मुकुन्ददास ने गंभीर स्वर में कहा—"वीरो! इन पतित, हत्यारों में से एक भी न बचने पावे। जो बाहर निकले, उसी के दो टुकड़े कर दो। सावधान रहो।"

देखते ही देखते आग की लपट प्रचण्ड हो गईं। गली-कूचे धूएँ से भर गए। प्रथम धीमा और फिर प्रचण्ड चीत्कार उठ खड़ा हुआ। कुछ ही क्षण में सारा नगर धायँ-धायँ जलने लगा। फूस की आग से लकड़ी के पुराने विशाल दरवाजे और दीवारें चर-चर करती जल उठीं। प्रतिक्षण आग प्रचण्ड होती जाती थी, और सब ओर दूर-दूर तक उसका आकाश फैल रहा था, जिसमें राठौर वीरों की भयानक काली मूर्तियाँ नंगी तलवार लिये चुपचाप खड़ी दिखलाई देती थीं।

मकानों से भयानक, करुण चीत्कारें आ रही थीं। मनुष्य झुलस रहे थे, और डकरा रहे थे। आग की लपटें आकाश को छू रही थीं, सिपाहियों के हृदय फटे पड़ते थे, परन्तु मुकुन्ददास हाथ में नंगी तलवार लिये चुपचाप पत्थर की मूर्ति की तरह अचल खड़े थे।

३

रात बीत गई। सूर्य की सुनहरी किरणें उस भस्मीभूत नगर पर पड़कर एक और ही समाँ दिखा रही थीं। एक भी मुग़ल जीता न बचा था। मुकुन्ददास और उनके वे सिपाही वहाँ से चले गए थे, और वह वृद्धा आँखें फाड़-फाड़कर उन जले हुए कंकालों को देख रही थी, जिन्होंने कल ही अत्याचार और क़त्ल के बाजार गर्म किए थे।

❀ ❀ ❀

हल्दीघाटी में

१

वर्षा ऋतु थी, लेकिन पानी नहीं बरसता था। हवा बन्द थी, बहुत गर्मी और घमस थी। एक पहर दिन चढ़ चुका था। कभी-कभी धूप चमक जाती थी। आकाश में बादल छाये हुए थे। अरावली की पहाड़ियों में, हल्दीघाटी की दाहिनी ओर एक ऊँची चोटी पर दो आदमी जल्दी-जल्दी अपने शरीर पर हथियार सजा रहे थे। एक आदमी बलिष्ठ शरीर, लम्बे कद, चौड़ी छाती वाला था। उसकी घनी और काली मूँछें ऊपर को चढ़ी हुई थीं और आँखें सुर्ख अँगारे की तरह दहक रही थीं। वह सिर से पैर तक फ़ौलादी ज़िरहबख्तर से सजा हुआ था। इस आदमी की उम्र कोई चालीस वर्ष की होगी। इसका बदन ताँबे की भाँति दमक रहा था।

दूसरा आदमी भी लम्बे क़द का था, किन्तु वह पहले आदमी की अपेक्षा दुबला-पतला था। वह अपनी दाढ़ी को बीच में से चीर कर कानों में लपेटे हुए था। उसके सिर पर कुसुमल रंग की पगड़ी बँधी हुई थी। उसके शरीर पर भी लोहे के ज़िरह-बख्तर थे। एक बहुत बड़ी ढाल उसकी पीठ पर थी और दो सिरोहियाँ उसकी कमर में बँधी हुई थीं। पहला व्यक्ति अपने सिर पर अपना फौलादी टोप पहन रहा था, किन्तु वह ठीक जँचता नहीं था। दूसरे व्यक्ति ने आगे बढ़कर कहा—घणीखम्मा अन्नदाता! आज का दिन हमारे जीवन के लिए बहुत महत्त्व का है। यदि आज नहीं तो फिर कभी नहीं। उसने आगे बढ़कर पहले आदमी के झिलमिले टोप को ठीक तरह से कस दिया। और फिर एक विशालकाय भाला उठाकर उस व्यक्ति के हाथ में दे दिया।

पहले व्यक्ति ने मर्मभेदिनी दृष्टि से अपने साथी को देखा। उसने मज़बूती से अपनी मुट्ठी में भाले को पकड़ा और मेघ-गर्जना की भाँति गम्भीर स्वर में कहा—ठाकराँ, तुमने ठीक कहा—"आज नहीं तो फिर कभी नहीं।"

वह पहला व्यक्ति मेवाड़ का राणा हिन्दू-पति प्रताप था और दूसरा सरदार ग्वालियर का रामसिंह तँवर था। सरदार ने अपनी कमर में दूध की भाँति सफेद पटका बाँधते हुए कहा—अन्नदाता! आज हमारी कराली तलवार बहुत दिनों की अभिलाषा को पूरी करेगी। आज हम अपनी स्वाधीनता के युद्ध में अपने जीवन को

सफल करेंगे, जीत कर या हार कर। प्रताप ने कहा—बिलकुल ठीक, यही होगा। मैं आज उस भाग्यहीन राजपूत कुल-कलङ्क को, जिसने अपने वंश की आन को नहीं, राजपूत मात्र के वंश को कलङ्कित किया है, इस अपराध का बराबर दण्ड दूँगा। वह एक बार फिर ऊँचाई तक तनकर खड़ा हो गया और उसने एक बार अपने उस विशालकाय भाले को अपने विशाल भुजदण्ड पर तोला।

सरदार ने अचानक चौंक कर कहा—अन्नदाता! आपकी यह मणि तो यहीं पर रह गयी। यह कहकर उसने पत्थर की चट्टान पर पड़ी हुई एक देदीप्यमान मणि उठाकर प्रताप के दाहिने भुजदण्ड पर बाँध दी। वह सूर्य के समान चमकती हुई मणि थी। उसे देख प्रताप ने हँसकर कहा—वाह! इस अमूल्य मणि को तो मैं भूल ही गया था; परन्तु ठाकराँ, सच बात तो यह है कि अब भूलने के लिए मेरे पास बहुत कम चीजें रह गयी हैं।

सरदार ने हाथ जोड़कर विनीत स्वर में कहा—स्वामी, आपका जीवन और आपका यह भाला जब तक सुरक्षित है, तब तक आपको संसार की किसी बहुमूल्य वस्तु की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। हमारे जीवन की सबसे बहुमूल्य वस्तु तो हमारी स्वतन्त्रता है। अगर हम उसकी रक्षा कर सके तो हमें ऐसी छोटी-मोटी मणियों की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

राजा ने मुस्कराकर वृद्ध सरदार की ओर देखा। सरदार

मनोयोग से वह मणि राजा के दाहिने भुजदण्ड पर सावधानी से बाँध रहे थे। प्रताप ने फिर मुस्कराकर कहा—किन्तु ठाकराँ, क्या सचमुच आपको इस बात का विश्वास है? इस मणि में क्या वह चमत्कार है कि जिसके विषय में किम्वदन्ती चली आ रही है? क्या यह सच है कि जो कोई इस मणि को पास में रखेगा वह युद्ध में अजेय और सुरक्षित रहेगा। सरदार ने गम्भीरता से कहा—अन्नदाता! बुड्ढे लोगों से यही सुनते आये हैं। प्रताप ने एक बार फिर अपने भाले को हिलाया। "तब ठीक है, आज इस बात की परीक्षा हो जायगी। परन्तु ठाकराँ, इस बात का फैसला कैसे होगा कि इस मणि का प्रभाव सबसे अधिक है या मेरे इस मित्र का।" उसने गर्व-पूर्ण दृष्टि से अपने भाले की तरफ़ देखा, उसे एक बार फिर हिलाया। उस धुँधले सूर्य के प्रकाश में उसकी बिजली के समान चमक उसकी आँखों में कौंधा मार गयी। उसने अपने होठों को सम्पुट में कस लिया और एक बार फिर जोर से अपने भाले को अपनी मुट्ठी में पकड़ा और कहा—मेरे प्यारे सरदार! जब तक यह वज्रमणि मेरे हाथ में है, मुझे किसी दूसरी मणि की परवाह नहीं।

पर्वत की उपत्यका से सहस्रों कण्ठ-स्वरों का जयघोष सुनाई पड़ा। राणा ने कहा—सेना तैयार दीखती है। अब हम लोगों को भी चलना चाहिए। वह आगे को बढ़ा और बुड्ढा सरदार उसके पीछे-पीछे।

२

बीस हज़ार योद्धा उपत्यका के समतल मैदान में व्यूह-बद्ध खड़े थे। घोड़े हिनहिना रहे थे और योद्धाओं की तलवारें झन-झना रही थीं। उस समय धूप कुछ तेज़ हो गयी थी, बादल फट गये थे। सुनहरी धूप में योद्धाओं के ज़िरहबख्तर और उनके भाले की नोकें बिजली की तरह चमक रही थीं। वे सब लौह पुरुष थे, सच्चे युद्ध के व्यवसायी, जो मृत्यु के साथ खेलते थे और जिन्होंने जीवन को विजय कर लिया था। वे देश और जाति के पिता थे। वे वीरों के वंशधर थे और स्वयं वीर थे। वे अपनी लोहे की छाती की दीवारें बनाये निश्चल खड़े हुए थे। चारण और बन्दीगण कड़खे के ताल पर विरद गा रहे थे। धौंसे बज रहे थे। घोड़े और सिपाही—सब कोई उतावले हो रहे थे।

सेना के अग्रभाग में एक छोटा-सा हरियाली का मैदान था। उसमें १७ योद्धा सिर से पैर तक शस्त्रों से सजे हुए खड़े थे। उनके घोड़े उन्हीं के पास थे और वे सब भी ज़िरहबख्तर से सुसज्जित थे। सेवक उनकी बागडोर पकड़े हुए थे। ये मेवाड़ के चुने हुए सरदार थे और अपने राजा की प्रतीक्षा में खड़े हुए थे।

एक सिंह की भाँति राणा ने उनके बीच में पदार्पण किया। सत्रह सरदार पृथ्वी में झुक गये। उनकी तलवारें खनखना उठीं और पीठ पर बँधी हुई बड़ी ढालें हिल पड़ीं। सेना ने महाराणा

को देखते ही वज्रध्वनि से जयघोष किया। प्रताप ने एक ऊँचे टीले पर खड़े होकर अपने सरदारों और सेना को सम्बोधित करके कहा—"मेरे प्यारे वीरों के वंशधरो! आज हम वह कार्य करने जा रहे हैं, जो हमेशा हमारे पूर्वजों ने किया है। हम आज मरेंगे अथवा विजय प्राप्त करेंगे! हमारा इस युद्ध में कोई स्वार्थ नहीं है। हम केवल इसलिए युद्ध कर रहे हैं कि हमारी स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप हो रहा है। क्या यहाँ पर कोई ऐसा राजपूत है जो पराया गुलाम बना रहना पसन्द करे? उसे मेरी तरफ से छुट्टी है, वह अपने प्राण लेकर यहाँ से अलग हो जाय। परन्तु जिसने क्षत्राणी का दूध पिया, उसके लिए आज जीवन का सबसे बड़ा दिन है। आज उसे अपने जीवन की सबसे बड़ी साध पूरी करनी चाहिए।" इसके बाद प्रताप ने एक ललकार उठायी और उच्च स्वर से पुकार कर कहा—"वीरो! क्या तुम्हारे पास तलवारें हैं?" राणा ने फिर उसी तेजस्वी स्वर में कहा—"और तुम्हारी कलाइयों में उन्हें मज़बूती से पकड़ रखने के लिए बल है?" सेना ने फिर जयनाद किया, हज़ारों कण्ठ चिल्ला कर बोले—हम जीते जी और मर जाने पर भी अपनी तलवारों को नहीं छोड़ेंगे, हम में यथेष्ट बल है। राणा ने सतेज स्वर में कहा—"तब चलो, हम अपनी स्वाधीनता के युद्ध में अपने जीवन और अपने नाम को सार्थक करें।" एक गगनभेदी वाणी से सारा वातावरण भर गया। प्रताप उछल कर घोड़े पर सवार हो गया और तुरत ही सरदारों ने

उसे चारों तरफ से घेर लिया। पहाड़ी नदी के तीव्र प्रवाह की भाँति यह लौह पुरुषों का दल अग्रसर हुआ। धौंसा बज रहा था और कड़खे के ताल पर चारण और बन्दीगण सिपाहियों की प्रत्येक टुकड़ी के आगे उनके पूर्वजों की विरुदावलियाँ ओज-भरे शब्दों में गाते हुए चल रहे थे।

३

मुग़ल सैन्य एक लाख से अधिक था। जिसमें ६० हज़ार चुने हुए घुड़सवार थे। उसमें तुर्क, तातार, यवन, ईरानी और पठान सभी योद्धा थे। सवारों के पीछे हाथियों का दल था और उनपर धनुर्धारी योद्धा सजे हुए थे। दाहिनी तरफ वीर-शिरोमणि मानसिंह तीस हज़ार कछवाहों को लिये हुए खड़े थे। बायीं तरफ सेनापति मुज़फ्फ़रख़ाँ बाईस हज़ार मुग़लों के साथ था। हरावल में दस हज़ार चुने हुए पठानों की फौज थी। बीच में एक ऊँचे हाथी पर शाहज़ादा सलीम अपने ६ हज़ार शरीर-रक्षकों के साथ युद्ध की गति-विधि देख रहा था। दोनों सेनायें सामना होते ही भिड़ पड़ीं। प्रताप अपनी सेना के मध्य भाग में चल रहे थे। उनके दाहिने भाग में सलूँबरा सरदार थे और बायीं ओर विक्रमसिंह सोलङ्की प्रताप ने सोलङ्की को शत्रु के दाहिने पक्ष पर जम कर आक्रमण करने की आज्ञा दी। इसके बाद तुरन्त ही उन्होंने सलूँबरा सरदार को सीधे मुग़ल-पक्ष के बाँयें पक्ष में घुस जाने का आदेश

दिया और फिर वे तीर की भाँति अपने चुने हुए वीरों के साथ मुग़ल सैन्य के हरावल पर टूट पड़े। प्रताप का दुर्धर्ष वेग मुग़ल सैन्य न सह सका। हरावल टूट गया और सेना के सब प्रबन्ध में तुरत गड़बड़ी पैदा होगई। सलीम ने अपनी सेना को भागते हुए देखकर अपने हाथी के पैरों में जंजीर डाल दी। शाहज़ादे को दृढ़ता से खड़ा देखकर मुग़ल सेना फिर से लौट आयी। अब युद्ध का कोई क्रम न रह गया था। तेगा से तेगा बज रहे थे, दुधारें खड़क रही थीं, खून के फव्वारे बह निकले थे। घायलों और मरते हुओं का चीत्कार सुनकर कलेजा काँपता था। योद्धा लोग वीरदर्प से उन्मत्त होकर घायलों और अधमरों को अपने पैरों से रौंदते हुए आगे बढ़ रहे थे। प्रताप अप्रतिम तेज से देदीप्यमान थे और वे दुर्धर्ष शौर्य से मुग़ल-सैन्य में घुसते जा रहे थे। सरदारों ने उनको रोकने के बहुत प्रयत्न किए; परन्तु उनका क्रोध निस्सीम था, वे बढ़ते ही चले गये। सरदारों ने उनके अनुगमन की चेष्टा की परन्तु प्रताप उनसे दूर होते चले गये। युद्ध का बहुत कठिन समय आ गया था। प्रताप के चारों तरफ लोथों के ढेर थे परन्तु शत्रु उनकी तरफ़ उमड़े चले आ रहे थे। उनका चेतक हवा में उड़ रहा था। वे सलीम के हाथी के पास जा पहुँचे। उन्होंने चेतक को एड़ दी और भाले का एक भरपूर हाथ उछल कर हौदे में मारा। पीलवान मरकर हाथी की गर्दन पर झूल पड़ा। सलीम ने हौदे में छिपकर जान बचायी। फौलाद के मज़बूत हौदे में टक्कर खाकर प्रताप का

भाला भन्नाकर टूट पड़ा। प्रताप ने खींचकर दुधारा निकाल लिया, हजारों मुग़ल उनके चारों तरफ थे। हज़ारों चोटें उनपर पड़ रही थीं। प्रताप और उनका चेतक बराबर चले जा रहे थे। प्रताप ने आँख उठाकर देखा तो वे अपनी सेना से बहुत दूर चले आये थे। उन्होंने जीवन की आशा छोड़ दी और फिर दोनों हाथों से तलवारें चलाने लगे, लाशों का तूमार लग गया। चिल्लाहट और चीत्कार के मारे आकाश रो उठा। प्रताप का सुनहरे काम का झिलमिला टोप धूप में सूर्य की भाँति चमक रहा था। और उनके भुजदण्ड में बँधा हुआ वह अमूल्य रत्न आँखों में चकाचौंध लगा रहा था। उन्हें पहचान कर मुगल योद्धा उनपर टूट पड़े थे। प्रताप के बहुत से घाव लग गये थे। वे शिथिल होते और थके जारहे थे। उनके शरीर का बहुत रक्त निकल चुका था। उन्होंने थकित दृष्टि से अनन्त तक फैले हुए मुग़ल सैन्य की ओर देखा, एक ठण्डी साँस ली और अपने हृदय में एक वेदना का अनुभव किया। वे मृत्यु से आँख-मिचौनी खेल रहे थे।

४

सलूँबरा सरदार ने दूर से देखा। वे शत्रुओं के दाहिने पक्ष को बिलकुल विध्वंस कर चुके थे। कछवाहों से उन्होंने खूब लोहा लिया था। उन्होंने दूरसे देखा, प्रताप का अकेला झिलमिला टोप और वह अमूल्य मणि मुग़लों के अनन्त सैन्य-समुद्र में डूबती हुई नौका के समान एक क्षणिक झलक दिखा रहे हैं। उनके हृद

में हाहाकार मचने लगा। उन्होंने कहा—अरे! मेवाड़ का सूर्य तो यहीं अस्त हो रहा है। बुड्ढे बाघ ने अपने घोड़े को एड़ दी, उसकी बाग मोड़ी और अपने योद्धाओं को ललकार कर कहा—हिन्दूपति महाराणा की जय हो, वह देखो महाराणा ने शाहज़ादे के हाथी को घेर लिया है। आओ चलो, आज हम प्राण देकर महाराणा का अनुगमन करें। वीरों ने हुङ्कार भरी। बिजली की तरह तलवारें चमकने लगीं और तलवार के जादू से रास्ता बनने लगा। और अमर वीरों की वह छोटी-सी टुकड़ी शत्रु-सैन्य को चीरती हुई क्षण-क्षण में महाराणा के निकट होने लगी। महाराणा का एक हाथ बिलकुल निकम्मा हो गया था। अब उनमें वार करने की ताकत नहीं थी; वह केवल अपना बचाव करते थे। उनकी गर्दन कन्धे पर लटकने लगी। उन्हें मुमूर्षु अवस्था में देखकर यवन सैन्य ने वज्रध्वनि से अल्लाहो अकबर का नारा लगाया और दूसरे क्षण वह नाद "जय एकलिङ्ग" की वज्र गर्जन में विलीन हो गया। एक दफ़ा फिर तलवारों के उस समुद्र में ज्वार आया। महाराणा ने सचेत होकर पीछे की ओर देखा—रङ्गीन पगड़ियाँ उनकी तरफ को लहराती हुई चली आ रही हैं। उन्होंने एक बार चेतक को फटकारा।

दूसरे ही क्षण किसी ने उनके सिर पर से वह झिलमिला टोप उतार लिया और एक दूसरी पगड़ी उनके सिर पर रख दी। वह बहुमूल्य मणि भी उनके भुजदण्ड से खोल ली गई। महाराणा

ने मुरझायी हुई दृष्टि से देखा—सलूँबरा सरदार अपने घोड़े की बाग को दाँतों से पकड़ते हुए उनका झिलमिला टोप सिर पर रखे हुए हैं और उनकी वह मणि भी सरदार के दाहिने भुज-दण्ड पर बँधी हुई है, वे अपनी ओर उमड़ते हुए मुग़लों को ढकेलते हुए आगे बढ़ रहे हैं। प्रताप ने कहा--ठाकराँ ! यह क्या ? सरदार ने दोनों हाथों से तलवार चलाते हुए कहा—अन्नदाता ! आज यह सेवक अपने नमक का हक़ अदा करेगा। आप हिन्दू-कुल के सूर्य हैं, पीछे को हटते जाइये ! असमय में ही सूर्य को अस्त न होना चाहिए। जाइये स्वामी। सरदार ने अपने हाथ से चेतक की बाग मोड़ दी। और वे उनको बीच में करके पीछे हटने लगे। बेजोड़ लोह की मारें चारों तरफ से पड़ रही थीं, अपने पराये की किसी को सूझ नहीं थी। सलूँबरा सरदार बुड्ढे बाघ की भाँति भयानक वेग से हाथ चला रहे थे। प्रताप ने थोड़ी देर विश्राम पाकर चैतन्य लाभ किया। उन्होंने कंपित स्वर से कहा--ठाकराँ, आपके वंशजों को इस राज-सेवा का पुरस्कार मिलेगा। प्रताप ने चेतक को एड़ी दी और वे युद्धक्षेत्र से बाहर हो गये। झिलमिला टोप और मणि सलूँबरा सरदार के मस्तक और भुज-दण्ड पर मुग़ल सैन्य के बीच उसी प्रकार देदीप्यमान हो रहे थे और उसी प्रकार एक भुजदण्ड अनेकों मुग़लों के सिर काट रहा था। सारा यवन-दल अल्लाहो अकबर का जयनाद करता हुआ उसी झिलमिले टोप और देदीप्यमान मणि को लक्ष्य करते धावे

कर रहा था। असंख्य शस्त्र उनपर टूट रहे थे। धीरे धीरे जैसे सूर्य समुद्र में अस्त होता है उसी तरह लहू से भरे हुये उस रण-समुद्र में वह देदीप्यमान मणि से पुरस्कृत वीर भुजदण्ड और उस प्रताप के झिलमिले टोप से सुरक्षित वह उन्नत मस्तक झुकता ही चला गया और अंत में दृष्टि से ओझल हो गया।

युद्धक्षेत्र कई मील पीछे रह गया था। एक नाले के किनारे प्रताप थकित भाव से एक पत्थर का सहारा लिये हुए पड़े थे। और उनका चेतक वहीं पर पड़ा हुआ अन्तिम साँस ले रहा था। प्रताप ने पहले अञ्जलि में जल लेकर मुमुर्षु चेतक के मुँह में डाला। उसने जल को कण्ठ से उतार कर एक बार अपने स्वामी की ओर देखा और उसके बाद दम तोड़ दिया। वीरों का वंशधर वह प्रतापी राजा अपने उस घोड़े से लिपट कर विलाप करने लगा। उसके घावों से रक्त बह रहा था और उसके अंग-अंग घावों से भरे हुए थे। किसी ने पुकारा—महाराज! आप जैसे वीर को इस असमय में कातर होने का अवसर नहीं है। प्रताप ने आँखें उठा कर देखा, उनके चिर शत्रु भाई शक्तिसिंह थे। प्रताप ने ज्वालामय नेत्रों से शक्तिसिंह की ओर देखा और कहा—ऐ शक्ति-सिंह, क्या तुम आज इस समय ११ वर्ष बाद अपने इस अपमान का बदला लेने आये हो? मैंने तुम्हें मुगलों के सैन्य में बहुत ढूँढ़ा। मेरे अपराधी तुम और मानसिंह थे, सलीम नहीं। तुम लोग राजपूत पिता के पुत्र होकर और राजपूतनी का दूध पीकर

विधर्मी मुगलों के दास बने। मैं आज तुम दोनों राजपूत कुल-कलङ्कियों को मार कर अपनी जाति के कलङ्क को नष्ट किया चाहता था ! लेकिन अब तुम देखते हो इस समय तो मैं खड़ा भी नहीं हो सकता। मेरा प्यारा सहचर भाला उस युद्ध में टूट गया, मेरी तलवार भी टूट गयी, अब मेरे पास कोई भी शस्त्र नहीं है। परन्तु तुम्हारे जैसे गुलाम गीदड़, सिंह को घायल समझ कर उस पर आक्रमण करें यह सम्भव नहीं ! आओ, मैं मरने से पहले एक कलङ्कित राजपूत से पृथ्वी माता का उद्धार करूँ। प्रताप ने एक बार बल लगा कर उठने की चेष्टा की, पर वे उठ न सके। शक्तिसिंह ने तलवार फेंक दी। उन्होंने एक दाभ का टुकड़ा वहीं से उठा लिया और उसको दाँतों में दबा कर दोनों हाथ जोड़ कर वह आगे बढ़े। उन्होंने अपनी पगड़ी प्रताप के चरणों में रख दी और कहा---हिन्दपति राणा ! यह विश्वासघाती, कुल-कलङ्की कभी अपने को आपका भाई कहने का साहस नहीं कर सकता। तलवार मेरे पास है, उसकी धार अभी तीखी है। लीजिये महाराणा और अपने अपराधी को दण्ड दीजिये। उसने तलवार महाराजा के आगे रखदी; और सर झुका कर महाराणा के चरणों में पड़ गया। राणा की आँखों में आँसू उमड़ आये, उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से कहा—भाई शक्तिसिंह ! मुझे क्षमा करो, मैंने तुम्हें समझा नहीं; परन्तु यदि युद्ध के पहले तुम मेरे सामने आकर यह शब्द कहते और आज मैं तुमको सच्चे शिशोदिया की तरह तलवार

चलाकर मरते देखता, तो मुझे बहुत आनन्द होता । शक्तिसिंह ने कहा—युद्ध के समय तक मेरा मन द्वेष के मैल से परिपूर्ण था। और मैं मुग़लों का एक सेनापति था। किन्तु जब मैंने आपको घायल और निःशस्त्र युद्ध से लौटते हुए देखा और देखा कि दो मुग़ल शत्रु आपका पीछा कर रहे हैं तब मुझसे न रहा गया, माता का वह दूध, जो हमने तुमने एक साथ पिया था, सजीव होकर उमड़ आया। मैंने सेना को त्याग कर उन मुग़लों का पीछा किया और उन दोनों को मार गिराया। वह देखो वह दोनों नाले के पास मरे पड़े हैं। अब हिंदूपति महाराणा, आपकी जय हो। यह तलवार कमर से बाँधिये और मेरा यह घोड़ा लीजिये, सामने की उस घाटी में चले जाइये। वहाँ मेरे विश्वस्त अनुचर हैं, आपके घावों का तुरत बन्दोबस्त हो जायगा ।

प्रताप ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'और तुम शक्तिसिंह ?' 'महाराणा ! मैं शाहजादे सलीम के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करूँगा और उनसे कहूँगा कि वह मुझे अपने हाथी के पैरों से कुचलवा कर मार डाले; क्योंकि मैंने उनका सैनिक होकर उनके शत्रु की रक्षा की है ।' शक्तिसिंह रुका नहीं, चल पड़ा । प्रताप ने कहा—'भाई सुनो !' शक्तिसिंह ने कहा—'महाराणा ! मेरा अपराध बहुत भारी है। मैं कभी इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि आप मुझे दण्ड दे सकते हैं। मैं यवन-सेनापति से ही दण्ड चाहता हूँ।' शक्तिसिंह चले गये। प्रताप ने अपने वीर भाई

को पहचाना। वे बड़ी देर तक उनकी ओर देखते रहे और भाई की दी हुई तलवार, कमर में बाँधी और घोड़े पर चढ़कर चल दिये।

५

प्रातःकाल का समय था। महाराणा प्रताप पर्वत की एक गुफा में शिला पर बैठे हुए थे। पाँच सरदार उनके इर्द-गिर्द थे! उनके घाव अब अच्छे हो चले थे। वह शक्तिसिंह की बारम्बार प्रशंसा कर रहे थे। एक लम्बी मनुष्यमूर्ति उस गुफा के द्वार पर आकर खड़ी हो गयी। वे शक्तिसिंह थे। प्रताप भुजा भर कर उनसे मिले। शक्तिसिंह ने वह मणि अपने वस्त्र में से निकाल कर प्रताप के सामने रखी और कहा—'महाराज! यह मणि सलूँबरा सरदार ने मरते समय मुझे दी थी और वसीयत की थी कि मैं यह आपके हाथ में दूँ।' इसके बाद उन्होंने सलूँबरा सरदार की वीरतापूर्ण मृत्यु का करुण वर्णन किया, और वर्णन करते करते शक्तिसिंह रो पड़े। उन्होंने कहा—'महाराज, मैं अनुताप की आग में जला जाता हूँ। आपके पास से लौटकर मैंने सलूँबरा सरदार को देखा। उस समय भी उनके शरीर में प्राण थे। जब उन्होंने सुना कि स्वामी की प्राण-रक्षा हो गई तो उनके मुख पर मुस्कराहट आयी और फिर उनके प्राण निकल गये। धन्य हैं वे वीर क्षत्रिय सरदार, जो इस तरह अपने स्वामी के लिये प्राण देते हैं।

'मैंने सलीम से अपना अपराध कह दिया था। परन्तु सलीम ने कोई दण्ड न देकर आपके पास आने को कह दिया। अब महाराज आप मुझे दण्ड दीजिये !'

प्रताप ने अपने भाई का हाथ पकड़ कर प्रेम से अपने निकट बैठाया और उसी समय फ़र्मान किया कि—भविष्य में सलूँबरा सरदार के वंशधर मेवाड़ की सेना में हरावल में रहेंगे और शक्तिसिंह के वंशज युद्धक्षेत्र में दाहिने पक्ष पर रहेंगे।

कैदी की रिहाई

१

सूर्य-वंश-कुल-कमल-दिवाकर, हिंदूपति महाराणा राजसिंह अपने अटाले में बैठे काँसा आरोग रहे थे। उनके सामने और अगल-बगल चुने हुए सरदार और भाई-बंद बैठे थे। सबके आगे सोने के थाल और अन्य पात्र थे, परन्तु महाराणा का भोजन पलाश के पत्तों के दोनों में परसा हुआ था।

वसन्त का प्रारम्भ था, धूप निकल रही थी, महल की दीवारें पत्थर के टुकड़ों की थीं, इनमें खिड़कियाँ लगी हुई थीं, जिनमें से होकर सूर्य का प्रकाश वहाँ पड़ रहा था। महल का फ़र्श स्वच्छ मकराने के पत्थरों का था। महाराणा मध्य बिंदु की भाँति, बीच में, एक शीतलपाटी पर बैठे थे। उनका क़द मझोला, मूछें एक आध पकी हुई, रंग साँवला, आँखें बड़ी-बड़ी थीं। दाढ़ी नहीं थी। वह बदन पर एक रेशमी बहुमूल्य चादर डाले थे। सिर पर दूध

के झाग के समान सफेद पगड़ी थी, जिस पर एक बड़ा-सा लाल तुर्रा लगा था। कंठ में पन्ने का एक अत्यन्त मूल्यवान् कंठा था। उनका सीना चौड़ा, उठान ऊँची और शरीर बलवान् तथा फुर्तीला था। उनकी कमर में पीले रङ्ग की रेशमी धोती थी। उनके सिर के बाल काले, और बड़ी-बड़ी आँख मस्ती से भरपूर थीं।

महाराणा के दाहिने हाथ पर उनके ज्येष्ठ पुत्र, कुमार भीमसिंह जी बैठे थे। दोनों में बीच-बीच में धीमे-धीमे बातें हो रही थीं। कुछ सरदार कान लगा कर बातें सुन रहे थे, और कुछ अपने खाने में लगे हुए थे।

"बादशाह आलमगीर से जो यह नई सन्धि हुई है, यह हम दोनों के लिए शुभ है। अब देखना यही है कि धूर्त बादशाह उसका पालन भी करता है, या नहीं।" महाराणा ने सहज गंभीर स्वर में कुँवर भीमसेन से कहा।

कुमार ने कुछ खिन्न होकर कहा—"रावरी जैसी मर्जी हुई, वही हुआ। परन्तु आलमगीर पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। वह पूरा धूर्त और दुष्ट आदमी है।"

महाराणा ने ज़रा ऊँचे, किन्तु मृदु स्वर से कहा—"इस सन्धि से दो शत्रु परस्पर मित्र हो जायेंगे, देश की बिगड़ी हुई दशा सुधरेगी। कृषि, व्यापार और व्यवस्था ठीक होगी। देश में अमन-अमान क़ायम होगा।"

एक सरदार ने खाते-खाते कहा—"घणी खम्मा अन्नदाता, हम तो चारों तरफ से लूट-मार और जुल्म के समाचार सुन रहे हैं। संधि हुए अभी एक मास भी नहीं हुआ, कई घटनाएँ हो चुकी हैं। ग़रीब किसानों के खेत उजाड़े और गाँव जलाए जा रहे हैं!"

महाराणा ने जलद-गंभीर ध्वनि से कहा—"इन सब शिकायतों को लेकर पारसोली के राव केसरीसिंह बादशाह के पास भीम के थाने, शाही छावनी, गए हैं। जब तक उनका जवाब नहीं आ लेता, उनके विरुद्ध कुछ राय क़ायम करना ठीक नहीं।"

कुँवर भीमसेन ने लाल-लाल आँखों से महाराणा की ओर देख कर कहा—"और इसका क्या कारण है कि एक महीना होने पर भी बादशाह ने यहाँ से छावनी नहीं उठाई?"

पुत्र का रोष देख महाराणा हँस दिए। उन्होंने कुँवर की पीठ थपथपा कर कहा—"ग़ुस्सा मत करो, मेरे वीर पुत्र! इतना बड़ा बादशाह अपनी ज़िम्मेदारी को भी तो समझेगा।"

"परन्तु उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। उसने अभी तक छावनी क्यों नहीं तोड़ी? महाराज, दिल्ली के बादशाह से ईमानदारी की आशा रखना व्यर्थ है। मुझे भय है कि वह अवश्य षड्यंत्र रच रहा है।" कुमार ने उसी तीव्र स्वर में कहा।

महाराणा एकाएक गंभीर हो गए। उन्होंने कहा—"उसे ईमानदारी सीखनी होगी। सन्धि सन्धि है। देश में शांति और सुव्यवस्था बनाए रखने के लिये....."

महाराणा की बात मुँह की मुँह ही में रह गई। धड़ाके से कमरे का द्वार खुला, और धूल, गर्द तथा खून से लथपथ एक आदमी हवा के झोंके के साथ गिर पड़ा! गिरते ही उसने आर्तनाद के स्वर में कहा—"दुहाई अन्नदाता, क्या आपने कुछ सुना है?"

महाराणा के हाथ का कौर हाथ में रहा। कुँवर ने पूछा—"कहो-कहो क्या हुआ?"

महाराज, राव केसरीसिंह को कैद कर लिया गया और उनके साथियों के सिर काट डाले गए। श्रीमान्, उन्हें बड़ा धोखा दिया गया। प्रथम विश्वासघात करके उन्हें भीतर बुलाया गया, पीछे बीस आदमी टूट पड़े। अकेले वीर ने सबसे लोहा लिया, पर एक आदमी बीस के सामने कैसे ठहरता! वह घायल होकर बंदी हुए। महाराज, बड़ी कठिनाई से मैं संदेश लेकर आया हूँ। उन्हें कल प्रातःकाल सूर्योदय होने पर क़त्ल किया जायगा! उन्हें सेनापति रुहिल्लाखाँ बारह हज़ार सवारों की रक्षा में बदनौर के क़िले में ले गए हैं।"

क़त्ल? कल सूर्योदय होने पर?" कुमार भीमसिंह हाथ का कौर छोड़ कर उठ खड़े हुए। सभी सरदार भोजन छोड़ कर खड़े

हो गए। कुमार ने मुट्ठी कस कर कहा—"यह असम्भव है, अब हम संधि की मर्यादा नहीं रख सकते।"

सब सरदार एक स्वर से चिल्ला उठे—"कभी नहीं। चलो, अभी हम केसरीसिंह को छुड़ाएँगे।" कुमार की काली-काली आँखों से आग बरसने लगी, और वह क्रोध से थर-थर काँपने लगे।

महाराणा अभी तक चुप थे। उन्होंने गंगाजल से आचमन किया, अन्न को पाग कर चढ़ाया, और तलवार सूत कर कहा—"मैं संधि को रद्द करता हूँ। वीरो, केसरीसिंह ने एक बार सिंह से मेरी प्राण-रक्षा की थी। वैसे भी वह मेरी भुजा है। इसके सिवा संधि और विग्रह का अभिप्राय यह है कि प्रजा अभय हो। केसरीसिंह को छुड़ाने का बीड़ा कौन लेता है?"

कुँवर भीमसिंह ने कहा—"महाराणा, यह दास राव केसरीसिंह को लाकर अन्न-जल ग्रहण करेगा।"

इसके बाद उसने सरदारों की ओर लक्ष्य करके, ललकार कर कहा—"ठाकराँ, कौन कौन हमारे साथ जायगा?"

सब चिल्ला उठे—"महाराणा की जय! हम अभी तैयार हैं"

महाराणा ने हर्षित हो अपनी तलवार कुमार की कमर में बाँध दी और वह वीर दल दर्प के साथ चल दिया।

२

वासंती वायु आधी रात के सन्नाटे में शिशिर के झोंके दे रही थी। अभी वर्षा हो चुकी थी। पथरीली धरती में कहीं कहीं पानी भरा था। सड़कें साफ़ न थीं, और बहुत अँधेरी रात थी। चारों तरफ ऊजड़ बन था। कुछ फासले पर खड़े हुए नंगे पर्वत बहुत भयानक प्रतीत हो रहे थे। बदनौर का क़िला सामने दूर दिखाई दे रहा था। उस घनी अँधेरी रात में वह एक काले भूत की भाँति प्रतीत हो रहा था। इसी पथ पर एक छोटे-से क़द का आदमी अकेला ही घोड़े पर सवार, इधर से उधर चौकन्ना होकर देखता हुआ, बड़ी सतर्कता से आगे बढ़ रहा था उसकी घनी काली डाढ़ी, झब्बेदार साफा और चमकीली ज़िरहबख्तर तथा कीमती अरबी घोड़ा साफ़ बात रहा था कि वह कोई उच्चपदस्थ मुग़ल सरदार है। वह अपने असील काले घोड़े पर चढ़ा हुआ धीरे धीरे उस कीचड़-भरे, पथरीले, ऊबड़-खाबड़ मार्ग में धीरे धीरे चल रहा था। कभी वह ठंड से काँप उठता, कभी घोड़े की ठोकर से विचलित हो जाता। प्रतिकूल वायु तीर की भाँति उसे बेध रही थी। उसके ठंडे और दुःखदायी थपेड़ों से बचने के लिए उसने अपनी कमर से कमरपट्टा खोलकर मुँह पर लपेट लिया था। केवल उसकी आँखें और नाक का अग्रभाग ही बाहर निकला हुआ था।

एकाएक घोड़ों की टाप की आहट सुनकर वह चौंका। थोड़ी देर में देखा, सामने कुछ सवारों का दल आ रहा है। कुछ ही देर में उसने उनकी चमचमाती तलवारों और भालों की झलक देखी। वह हटकर झाड़ी में छिपकर खड़ा हो गया। एक-एक करके सवार सामने आए! सबके आगे कुँवर भीमसेन थे। वह मुश्की घोड़े पर सवार, सीना ताने, चारों तरफ़ देखते हुए आगे बढ़ गये। उनके पीछे के सवारों को मुग़ल ने गिना। कुल दस थे। उसका माथा सिकुड़ गया। उसने भुनभुना कर कहा—"या ख़ुदा, खुद कुमार भीमसेन इस आधी रात में कहाँ जा रहे हैं? इस बेवक्त के सफर का क्या मतलब है?"

सवार आगे बढ़ गये। वह भी अपने रास्ते पर चला। आधी मील जाने पर उसने फिर घोड़ों की टाप सुनी। बहुत तेजी से वह दल बढ़ा आ रहा था। मुग़ल झाड़ी में छिप गया। सवार सामने होकर गुज़रने लगे। कुल दस सवार थे। सब सिर से पैर तक हथियारों से लदे हुए। उनके आगे श्वेत रंग के ऊँचे घोड़े पर जो व्यक्ति था, उसे देख इस मुग़ल के छक्के छूट गए। उसने फिर भुनभुना कर कहा—"खुद महाराणा भी उन चुनीदा सवारों के साथ हैं! ज़रूर आज बादशाह की ख़ैर नहीं है।"

वह ज़रा तेज़ी से आगे बढ़ा। कुछ ही देर में उसे फिर घोड़ों की टाप का शब्द सुनाई दिया। उसने छिपकर देखा, कुल

दस थे। सब के घोड़े कीमती थे, परन्तु इनके पास हथियारों के स्थान पर कुदाल और पत्थर तोड़ने के हथौड़े थे। मुग़ल ने साहस करके पूछा—"भाइयो, इस अँधेरी रात में कहाँ जा रहे हो? क्या बदनौर के किले में कुछ काम करने के लिये तुम्हें बुलाया गया है?"

एक ने हँसकर कहा—"हाँ जी, एक पहाड़ी कौए का घोंसला तोड़ना है। वह बदनौर के किले में ही है।" बोलने वाला ही-ही करके हँस दिया। वे आगे बढ़ गये। किसी ने पीछे फिर कर न देखा।

मगर वह मुग़ल कुछ देर वहीं खड़ा सोचता रहा। उसने मन-ही-मन भुनभुना कर कहा—"आसार अच्छे नहीं नज़र आते। मुझे किले में लौटना ही पड़ेगा। और बादशाह आलमगीर को इस आने वाली मुसीबत से सावधान करना पड़ेगा।" उसने फिर घोड़ों की टाप सुनी। और, क्षण-भर में और दस सवार हथियारों से लैस उसके सामने होकर गुज़र गये। अब उसने अपना कर्त्तव्य निर्णय कर लिया।

वह लोमड़ी की भाँति चक्कर काट कर उस अगम पार्वत्य प्रदेश में घुस कर गायब हो गया। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उस जंगल की चप्पा चप्पा जमीन उसकी देखी समझी हुई है।

२

चालीसों व्यक्ति चुपचाप अपने अपने घोड़ों पर निस्तब्ध भाव से खड़े थे। सामने लूनी नदी का तीव्र प्रवाह मरमर शब्द करता बह रहा था। इस समय आँधी बढ़ गई थी और वर्षा भी होने लगी थी। ठंडे पानी की बूँदें हवा के झकोरे के साथ तीर-सी लगती थीं। धीरे धीरे वर्षा बढ़ चली। ओले भी गिरने लगे। उनकी बौछारों से घोड़े घबरा कर हिनहिनाने लगे। नदी के पास किले की गगनचुम्बी दीवारें थी। उसके पीछे ढालू पर्वत था। किले में प्रकाश था। सर्वत्र सन्नाटा और अंधकार था।

"अपने-अपने घोड़ों से उतर पड़ो।" महाराणा ने मृदुस्वर में कहा। "ये आँधी और मेह से घबरा गये हैं। संभव है, वे हिन-हिना कर और उछल-कूद कर किले के आदमियों को जगा दें। उन्हें किले के नजदीक रखना ठीक नहीं। दस आदमी उन्हें लेकर यहीं इनकी निगरानी करो। हमें लौटती बार इनकी ज़रूरत पड़ेगी। बाक़ी वीर हमारे साथ बढ़ो।" महाराणा इतना कह कर नदी में घुस पड़े। उनके पीछे कुमार और कुमार के पीछे तीस वीर उस अगाध जल में पैठ गये।

"जल छाती से भी अधिक है महाराज!" कुमार ने चिल्ला कर कहा—"सब सरदार सावधानी से आगे बढ़ें। ठहरिए, मैं आगे आता हूँ। किला मेरा है, मैंने ही केसरीसिंह के उद्धार की

प्रतिज्ञा की है, वह प्राण देकर भी पूरी की जायगी।

धीरे धीरे सभी वीरों ने नदी को पार किया।

पानी की लहरें वायु वेग से पत्थर की चट्टानों पर उछल रही थीं; पर प्रत्येक ने एक दूसरे को कस कर पकड़ रक्खा था। वे अन्त में उस पार जा लगे।

महाराणा ने हँस कर कहा—"भीमसेन, तुम तैरने की कला में इतने दक्ष हो!"

भीमसेन ने हँस कर कहा—"महाराज, मैं पानी का चूहा हूँ।" उसने अपनी पोशाक निचोड़ी, और पगड़ी से पानी झाड़ा।

सभी वीर अपना-अपना सामान ठीक करने लगे। महाराणा ने तलवार सूत कर कहा—"अच्छा, अब सब कोई चुपचाप हमारे पीछे आवें। एक शब्द भी न होना चाहिये।"

भीमसिंह ने आगे बढ़कर कहा—"श्रीमान्! मेरा कार्य मुझे करने दीजिये।" और वह आगे बढ़ गया। सब कोई उसके पीछे-पीछे चले। किले के निकट आने पर महाराणा ने सब मजदूरों को अपना काम करने का संकेत किया। उन्होंने बड़ी सावधानी तथा फुर्ती से दीवार पर ज़ीना बना लिया। इसके बाद सब लोग आहट पाने के लिये कुछ देर रुक गये। कुमार सर्वप्रथम ज़ीने से सफीलों पर चढ़ गए, इसके बाद महाराणा और फिर सब सरदार।

कुमार और महाराणा ने सब वीरों को वहीं दीवार पर लेटे रहने का आदेश दिया, और स्वयं पंजों के बल चलकर प्रहरी के ठीक पीछे जा खड़े हुए। आहट पाते ही प्रहरी ने गर्दन फिरा कर देखा ही था कि कुमार की तलवार अपना काम कर गई। प्रहरी छिन्न मस्तक हो पृथ्वी पर गिर गया।

इसके बाद ही महाराणा ने उच्च स्वर से भेरी-नाद की आज्ञा दी। तीस भेरी वज्र नाद की भाँति बज उठीं। रात्रि की निस्तब्धता कोलाहल में परिवर्तित हो गई। इस समय मूसलाधार पानी बरस रहा था। तीसों व्यक्ति तीर की भाँति एक ओर को भागकर आँख से ओझल हो गये। वे शीघ्र ही बन्दीघर में पहुँचे। उन्होंने आनन्-फानन् उसकी छत में बड़ा सा छेद कर लिया, और कूद गए। इसके बाद कुल्हाड़ियों से मजबूत द्वार भी तोड़ डाला।

क़िले के लोग उस भयानक रात में यह कोलाहल सुनकर भयभीत थे। किसी को न सूझता था कि क्या करें।

बंदीघर का द्वार भंग करके भीमसिंह ने कहा—"दरबार, आप यहीं ठहरे, मैं अभी आया।"

वह दो वीरों के साथ भीतर घुस गए।

४

क़ैदी सुख से खर्राटे ले रहा था। द्वार-भंग के धमाके से

उसकी आँखें खुल गईं वह उठकर चटाई पर बैठ गया, और आँख मलने लगा।

"सूर्योदय होने पर तुम कत्ल किए जाने वाले हो, और इस समय सुख की नींद सो रहे हो।" कुमार भीमसिंह ने कहा, और खिलखिला कर हँस पड़ा।

केसरीसिंह ने कुमार के स्वर को पहचान कर कहा—"असंभव, जब तक आप जैसे स्वामी मेरे रक्षक हैं।" उसने अपनी टाँगें फैला दीं, और हाथों को ऊपर उठाकर हिला दिया। भारी-भारी बेड़ियाँ और हथकड़ियाँ झनझना उठीं।

"उठो, उठो, अभी हमें बहुत काम करना है।" कुमार ने केसरीसिंह को पकड़ कर उठाया। पर उन भारी बेड़ियों ने उसे उठने न दिया। तुरन्त कुमार ने केसरीसिंह को उठाकर अपने कन्धों पर बैठा लिया।

दोनों वीर बाहर आये। केसरीसिंह महाराणा के चरणों में लोट गए। महाराणा ने कहा—"यह शिष्टाचार का स्थान नहीं। चलो चलें, कोलाहल बढ़ता आ रहा है, मशालें जल गई हैं।"

"घणी खम्मा अन्नदाता, परन्तु अपने अतिथि-सत्कार के कर्ता-धर्ता को तो धन्यवाद दे लूँ। कुमार, जरा आप कष्ट कीजिए। अन्नदाता, आप क़िले से बाहर पधारें, हम अभी आते हैं।"

दोनों वीर क्षण भर में आँखों से ओझल हो गए।

५

नदी-तीर पर आकर कुमार ने केसरीसिंह को कन्धे से उतारा। उसकी भारी बेड़ियाँ खनखना उठीं। कुमार ने कहा—"बड़ा उजड्ड सवार रहा यह। मेरा कन्धा चकनाचूर कर दिया।"

सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। केसरीसिंह का हृदय कृतज्ञता से परिपूर्ण था। एकाएक भयानक प्रकाश फैल गया। लोगों ने देखा, क़िला धाएँ धाएँ जल रहा है। महाराणा ने पूछा—"यह क्या हुआ है?"

कुमार ने कहा—"कुछ नहीं महाराज, राव केसरीसिंह इसी कौतुक के लिए तो ज़रा इधर गये थे।"

केसरीसिंह ने कहा—"अपराध क्षमा हो महाराज, मैंने सोचा, इस प्रकाश में बादशाह आलमगीर को श्रीमहाराज के दर्शन ही हो जायँ, तो अच्छा।"

एक बार फिर ज़ोर की हँसी का फव्वारा छूटा! एकाएक क़िले का द्वार खुला, और सैकड़ों मशालें लिए चींटी के दल की भाँति मुग़ल-सेना अल्लाहो अकबर का नाद करती बाहर आई।

हमारे वीर यात्री एक बार फिर ज़ोर से हँसे, और नदी में पैठ गये। महाराणा ने तलवार सूत कर कहा—"सब कोई पार जाओ, मैं यहाँ शत्रु-दल को रोकूँगा।"

कुमार ने हँसकर कहा—"अन्नदाता, यह दास आपका सेनापति है। आप आगे पधारें। हम लोग यहाँ हैं।"

वह अपने दस साथियों के साथ घाट पर जम गए। राणा और उनके साथी सकुशल पार उतर गए, और उसके बाद कुँवर भी।

चलती बार मुग़ल सेनापति रुहिल्लाखाँ को निकट देखकर केसरीसिंह ने कहा—"ख़ाँसाहब! आपकी ख़ातिरदारी और रहने सहने का खर्च फिर किसी समय चुका दिया जायगा। फ़िलहाल *अपनी सज्जनता का इनाम लेते जाइए।*"

उसने कुमार की पीठ से भाला खींचकर मारा। फ़ौजदार साहब की हीरा-जड़ी पगड़ी छप से पानी में जा गिरी। उसे लपक कर उन्होंने अपने भाले की नोक पर ले लिया। रुहिल्लाखाँ किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति वहाँ खड़ा रहा। उस दुर्घट समय में नदी पार करने का उन्हें साहस नहीं हुआ।

तब तक महाराणा और उनके साथी अपने घोड़ों पर चढ़कर अपने मार्ग पर चल दिये थे।

रण-बंका राठौर

१

संवत् १७५३ की बात है। सिरोही के ऊबड़-खाबड़ और उजाड़ पहाड़ों की एक कंदरा में एक २१ वर्ष का युवक बहुत-सी लकड़ियाँ जलाकर उस पर एक समूचे हिरन को भून रहा था। उसके कपड़े मैले और फटे हुए थे। कहना चाहिए, उनकी धज्जियाँ उड़ गई थीं। परन्तु उन दरिद्र वस्त्रों में उसका तेजस्वी मुख और लँबी भुजाएँ छिप न सकी थीं। उनकी चमकीली, गहरी काली आँखें, उभरी हुई छाती, घुँघराले काले-काले बाल और ऊँचा मस्तक उसके असाधारण व्यक्तित्व को प्रकट कर रहा था।

वह जो काम कर रहा था, मानो उनका उसे काफ़ी अभ्यास हो गया था। वह हिरन को भूनता जाता था, साथ ही उस तंग और अँधेरी कंदरा को साफ़ भी करता जाता था। बड़ी तेज़ गर्मी

थी, लू चल रही थी। दोपहर ढल चुकी थी। आग जलने से उसका मुँह लाल हो गया था। पसीना टप-टप टपक रहा था, फिर भी वह बराबर फुर्ती से अपने काम में लगा हुआ था। यह जोधपुर का छद्मवेशी भावी राजा अजीतसिंह था, जिसे जीता या मरा पकड़ने के लिये सारे राजपूताने में बादशाह आलमगीर के जासूसों का जाल बिछा दिया गया था, और जिसके सिर का मूल्य एक लाख रुपया था। वह दो मास से इसी पर्वत की उपत्यका में छिपता फिर रहा था। उसके यशस्वी और वीर सरदार दुर्गादास मेवाड़ की सहायता से बादशाही छावनियों को लूटते-पीटते इस समय जालौर के क़िले को घेरे पड़े थे। वहाँ से पल-पल में समाचार पाने की आशा थी। युवक राजा उत्सुकता से उसकी बाट जोह रहा था।

राजा बहुत भूखा था, परन्तु बेचैनी उससे भी ज्यादा थी। वह जल्दी-जल्दी अपना काम कर रहा था, साथ ही कभी-कभी गहरी साँस भी ले लेता था। अंत में उसने कुछ सोचकर एक लंबी साँस ली, अपने बिखरे हुए बालों को गर्दन हिलाकर ठीक किया।

एकाएक उसे अपने पीछे एक परछाईं नज़र पड़ी। उसने देखा, वीरवर मुकुंददास प्रसन्न-वदन खड़े कौतुक से युवक राजा की कारस्तानी देख रहे हैं। उनके चेहरे पर श्वेत दाढ़ी और बड़ी बड़ी आँखें मानो कुछ आनंदप्रद मूक संदेश कह रही थीं

उन्होंने अपने विशालकाय बर्छे को एक तरफ़ रखते हुए कहा—

"कुमार, इस गर्मी में आप इस खटपट में लग रहे हैं !"

अजीतसिंह खिलखिलाकर हँस पड़े। पर उन्होंने तुरन्त ही देखा कि मुकुंददास के पीछे और भी कई व्यक्ति हैं। उनमें एक प्रौढ़ा महिला, एक किशोरी बालिका और एक प्रभावान् भद्र पुरुष भी हैं। राजा ने उत्सुकता से उनकी ओर देखा, और फिर जिज्ञासा की दृष्टि से मुकुंददास की ओर ताकने लगे।

मुकुंददास ने विनय-पूर्वक कहा—"कुमार, यही मेडातिया के सरदार विजयसिंहजी हैं। धाय-माँ ने आपसे सब बातें तो कही ही हैं। ये इनकी पत्नी और कन्या हैं। सरदार आपकी सेवा में कुछ शुभ-संदेश लाए हैं। जो वह स्वयं ही निवेदन करना चाहते हैं।"

मुकुन्ददास यह कहकर, झुककर एक ओर हट गये। विजयसिंह ने आगे बढ़कर मुजरा किया और कहा—"महाराज की जय हो। आप तो जानते ही हैं कि यह दास बादशाह का मनसबदार है और बादशाह की ओर से बदनौर का क़िलेदार था। वह क़िला अब वीर श्रेष्ठ दुर्गादास ने विजय कर लिया है, और बादशाह आलमगीर दक्षिण में मर गया है।"

अजीतसिंह ने हर्षोल्लास से कहा—"विजय कर लिया है? यह आप क्या कह रहे हैं? बादशाह मर गया!" "जी हाँ महाराज, वह क़िला अब उन्हीं के हाथ है। साथ ही सिवाना का किला

भी मुगलों से छीन लिया गया है।" अजीतसिंह सुनते गए। उसके बाद सरदार ने हँस कर कहा—"महाराज किलेदारी की प्रतिष्ठित नौकरी इस प्रकार छिन जाने और बादशाह आलमगीर के मर जाने से यह सेवक अब बेघर-बार का हो गया है। इसी से महाराज की सेवा में आया हूँ। यदि श्रीमान् एक मुट्ठी अन्न···"

अजीतसिंह खूब ज़ोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा—"एक मुट्ठी अन्न की खूब कही! यहाँ आठ दिन से एक दाना नसीब नहीं हुआ। परन्तु हानि नहीं, आप तो क्षत्रिय ही हैं। आखेट उपस्थित है। बैठिए, एक बार तो अच्छी तरह पेट की ज्वाला बुझाई जाय।"

मुकुन्ददास हँस पड़े। उन्होंने सरदार का हाथ पकड़ कर कहा—"बैठिये सरदार, महाराज के साथ आपको भोजन करना ही पड़ेगा।"

अब इतनी देर बाद अजीतसिंह का ध्यान महिलाओं की ओर गया। उन्होंने बालिका को एक छिपी नज़र से देखा। वह नवीन केले के पत्ते से समान शुभ्र वर्णवाली बालिका लाज से अपने ही में सिकुड़ी जा रही थी। एक बार अजीतसिंह ने अपने फटे वस्त्रों की ओर देखा। वह ज़रा मुस्कराकर महिला की ओर देख कर बोले—"आज मेरा अहोभाग्य कि आप पधारी हैं! परन्तु शोक है, आपके बैठने योग्य स्थान तक मेरे पास नहीं।" उन्होंने फिर उसका दोनों हाथ जोड़ कर अभिवादन किया।

इसके बाद हँसकर मधुर स्वर में कहा—"विराजिए माता, मैं कोई भविष्यवाणी करना नहीं चाहता।" उसने एक बार कंदरा पर दृष्टि फैलाई और फिर कहा—"यह स्थान यद्यपि आपके योग्य नहीं, तथापि आप विराजिये तो।"

महिला एक क़दम बढ़ी। उसने हँसकर कहा—"कुमार तुमने सरदार की बात तो सुनी। मेरी भी सुनो, तो मैं बैठूँ।"

कुमार कुछ हँसे और जिज्ञासा की दृष्टि से महिला की ओर देखने लगे। महिला ने एक बार बालिका के सलज्ज मुख की ओर देखा, फिर कहा—"कुमार, ईश्वर तुम्हें विजयी और दीर्घ-जीवी करें। तुम्हें मेरी भेंट स्वीकार करनी ही होगी।"

"मैं आपकी सभी आज्ञाओं का पालन बिना विचारे करूँगा।"

महिला ने भेद-भरी दृष्टि से सरदार की ओर देखा, फिर कन्या की ओर। इसके बाद कुमार की ओर देखकर हँस दी। कुमार ने झुककर महिला के चरण छुए। मुकुन्ददास हर्ष से चिल्ला उठे। सब भोजन करने बैठे।

२

भोजन समाप्त कर सरदार विजयसिंह ने कहा—

"अब मेरा निवेदन है कि आप एक क्षण भी यहाँ न रहें। क्योंकि

जासूसों को आपका पता लग गया है और वे आपकी खोज में हैं।"

युवराज ने हँसकर कहा—"सो तो मैं दो महीने से सुनता आ रहा हूँ।"

सरदार ने कहा—"अब हमें अत्यंत गुप्त रूप से जोधपुर की ओर प्रस्थान करना चाहिए। ठाकुर दुर्गादास की भी यही सम्मति है। जोधपुर के निकट ही मेरे सम्बन्धी का घर है, हम वहीं छिपकर कुछ दिन रहेंगे, और अवसर पाते ही किले पर धावा कर देंगे। महाराज को देखते ही राठौर एकत्र हो जायेंगे।"

मुकुन्ददास ने भी इस सम्मति का समर्थन किया। परन्तु कहा—"किन्तु कुमार का खुले रूप में चलना आपत्ति से खाली नहीं है।"

महिला ने हँसकर कहा—"मुझे एक उपाय सूझा है। यदि कुमार स्वर्णलता की सखी या दासी बनकर स्त्री-वेश में हमारे साथ धीरे २ तीर्थ-स्थानों में घूमते घूमते जोधपुर की ओर चलें, तो कैसा? यद्यपि यह बहुत कठिन और संकटमय है, पर हमें जल्द से जल्द जोधपुर पहुँच जाना चाहिये।" महिला का प्रस्ताव सुन अजीत ने घबरा कर बालिका की ओर देखा—वह संकोच और लज्जा से दबी जा रही थी। महिला ने कहा—"बेटी, यह राजा की प्राण-रक्षा का प्रश्न है। संकोच से काम न चलेगा।

तुम इनसे सखी के समान ही बात करना, जिससे किसी को भी संकोच न हो।"

अजीतसिंह हँस पड़े। उन्होंने कहा—"माता, मैं आपकी पुत्री की सेविका बनना अपना सौभाग्य समझूँगा, किन्तु....." उसने अपने चिथड़ों की ओर देखा।

महिला ने कहा—वस्त्रों का प्रबन्ध हमारे साथ है।

"तब ठीक।" अजीतसिंह एक बार फिर हँस दिए।

एक घंटे के बाद अजीतसिंह युवती दासी के वेश में स्वर्णलता के पीछे खड़े थे। सरदार ने कहा—"महाराज, याद रखिये, आपका नाम 'रत्नकुँवरि' है।"

"समझ गया, सरदार!"

महिला ने हँसकर कहा—"वाह आप क्या भूल गये कि आप पुरुष नहीं, स्त्री हैं और मेरी कन्या की दासी हैं।"

राजा ने घूँघट सरकाकर कहा—"श्रीमतीजी, दासी यह बात सदा याद रक्खेगी।"

एक बार सब खिलखिलाकर हँस पड़े। सब लोग तीर्थ-यात्रियों के वेश में वहाँ से चल दिये।

तमाम दिन की कड़ी मंजिल तय करने के बाद, जब सूरज लाल-लाल मुँह किये पश्चिम में छिप रहा था, यह दल एक गाँव की सीमा पर पहुँचा। विजयसिंह ने कुमार के निकट आकर कहा—"आप सब कोई यहीं वृक्ष के नीचे ठहरें। यहाँ मेरे एक

सम्बन्धी रहते हैं। आजकी रात हम यहाँ मजे में बिता सकते हैं, कोई भय नहीं।"

विजयसिंह यह कहकर भीतर गढ़ी में चले गये। थोड़ी देर में एक वृद्ध के साथ वह धीरे-धीरे आ रहे थे। वृद्ध की सफेद दाढ़ी हवा में लहरा रही थी। डोलियों के निकट आकर विजयसिंह ने मुकुन्ददास का परिचय देकर कहा—"स्वयं महाराज अजीतसिंह भी सवारी में हैं, मुजरा कीजिये।" अजीतसिंह का नाम सुनते ही बूढ़े ठाकुर का मुँह भय से सफेद हो गया। उसने दोनों हाथ विजयसिंह जी के कन्धे पर रखकर भयभीत स्वर में कहा—

"ठाकराँ! आपतो जानते ही हैं कि मैं महाराज का दासानुदास हूँ, परन्तु इस समय मैं इन्हें आश्रय नहीं दे सकता। मेरी समझ में यहाँ एक क्षण भी आपको नहीं ठहरना चाहिए।"

विजयसिंह का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने तलवार की मूठ पर हाथ धरकर कहा—"ठाकराँ, महाराज आज यहीं अपने सेवक के यहाँ ठहरेंगे। क्या आप भूल गये कि आपको यह ठिकाना बड़े महाराज ने कृपा करके दिया था?"

"ठाकराँ, आप क्रोध क्यों करते हैं। आप मेरा मतलब समझे ही नहीं।" फिर धीमे स्वर से बोले—"गढ़ी में मुगल सेनापति ठहरे हुए हैं यदि भेद खुल गया, तो सब करा कराया मिट्टी में मिल जायगा। हम लोग उनका मुकाबिला भी तो नहीं कर सकते।"

मुकुन्ददास आगे बढ़ आये। तीनों सरदार सलाह कर रहे थे। विजयसिंह ने चिंतित होकर कहा—

"परन्तु हम आगे भी तो नहीं बढ़ सकते। सवारी और घोड़े सब दिन-भर के थके हैं। हम लोगों ने भोजन भी नहीं किया है।"

मुकुन्ददास ने कहा—"और भी एक बात है—हम लोग चुपचाप चले भी जायँ, तो उसे खबर लगते ही वह हम पर शक करेगा। वह वास्तव में हमारी ही तो टोह में है।"

कुमार पालकी से निकल कर बोले—"आप लोगों के परामर्श में क्या मैं कुछ भी भाग नहीं ले सकता?"

"आप कृपा कर भीतर विराजिए। बहुत ही गंभीर स्थिति है। गढ़ी में मुग़ल-सेनापति है।"

कुमार ने कहा—"जब सिर ओखली में दिया, तो डर काहे का? आप लोगों को तो कुछ भय नहीं है। चचा पहचाने जा सकते हैं। परन्तु वह आपके पुरोहित बन सकते हैं, और मैं तो आपकी दासी ही हूँ।" कुमार एक बार फिर हँस दिये।

निरुपाय सब कोई गढ़ी में घुसे। स्त्रियाँ और कुमार अंतःपुर में भेज दिये गये। मुकुन्ददास चिंतित थे।

मुग़ल-सेनापति को तुरन्त ही नवागंतुकों के आने का पता लग गया। उसने तुरन्त उन्हें बुला कर बातचीत की और शराब का गिलास हाथ में लेकर कहा—"सो, आप लोगों को उस जालिया राजकुमार की रास्ते में कोई खोज नहीं मिली? कुछ

परवाह नहीं, मैं उस चूहे को इस पहाड़ से ढूँढ़ निकालूँगा, पर वह बड़ा चालाक कुत्ता है।"

मुकुन्ददास की आँखों से आग निकलने लगी। पर विजयसिंह कहा—"जनाब, यह हमारे पुरोहितजी इल्म नजूम में बड़ी शोहरत रखते हैं, इनसे आप दर्याफ़्त कीजिए, शायद पता चले।"

सरदार हँस दिया। उसने अपना घमंड भरा चेहरा मुकुन्ददास की ओर फेरकर कहा—"क्यों बूढ़े, बता सकता है, वह काफ़िर कहाँ है?

मुकुन्ददास ने लोहू का घूँट पीकर, मीन-मेख करके कहा—"वह यहीं नज़दीक ही कहीं है।"

विजयसिंह काँपने लगे। मुग़ल सरदार ने उत्तेजित होकर कहा—"क़सम खुदा की, मैं ईंट से ईंट बजा दूँगा। अच्छा, अब आप लोग आराम कीजिए।"

विजयसिंह की जान बची। दूसरे दिन प्रभात ही यह दल फिर अपनी मंजिल पर था।

४

दक्षिण-पूर्व की ठंडी हवा चल रही थी। दोनों सरदार घोड़ों पर और स्त्रियाँ पालकी में थीं। कुछ सिपाही ऊँटों पर और कुछ

पैदल थे। कुछ दासियाँ और सेवक बैलगाड़ियों पर थे। महाराज अजीतसिंह भी स्त्री-वेश में एक पालकी पर थे। उसमें एक दासी उनके साथ बैठी थी। सवारी जोधपुर की ओर बढ़ रही थी।

संध्या हो रही थी। पश्चिम में आकाश लाल हो रहा था। कहीं-कहीं बादल घूम रहे थे। सरदार विजयसिंह ने घोड़ा बढ़ाकर कुमार के बराबर किया और कहा—'यहाँ से बदनौर का किला अभी कोस भर है। परन्तु मुझे लक्षण ठीक नहीं प्रतीत होते। मालूम होता है, मुग़लों का एक दल इधर घूम रहा है। आप सावधान रहें।

कुमार ने पालकी का पर्दा उठा कर, हँस कर कहा - "मैंने सिर्फ वेश ही स्त्री का धारण किया है, पर मैं रण-बंका राठौर हूँ। रावजी, आप चिंता न करें, मुग़ल एक हो चाहे लाख, मैं सभी को चीरकर फेंक दूँगा।"

'ठहरो कुमार!" मुकुन्ददास ने आगे बढ़कर कहा--"वे लोग इधर ही आ रहे हैं। अभी तुम चुपचाप पालकी में अपने स्त्री-वेश को निबाह कर बैठे रहो। यह समय युद्ध का नहीं। इसके बाद वह इधर-उधर सावधानी से अपने पूरे क़ाफ़िले के चारों तरफ़ एक चक्कर काट गए।

मुग़लों के सरदार ने ललकार कर कहा--"यह किसकी सवारी है? सवारी रोक लो।"

विजयसिंह मुस्कराते हुए आगे बढ़े। उन्होंने कहा—"मैं तीन हज़ारी मनसबदार विजयसिंह हूँ। तीर्थ-यात्रा से लौट रहा हूँ।"

मुग़ल सरदार ने उद्दण्डता से कहा—"तुम्हारा पर्वाना कहाँ है?"

सरदार के उत्तर देने से प्रथम ही मुकुन्ददास आगे बढ़ आए। उन्होंने कहा—"कैसा पर्वाना आप चाहते हैं खाँसाहब?"

मुग़ल-सरदार ने झल्लाकर कहा—"तुम लोगों में सरदार कौन है, वह जवाब दे; मैं जिस-तिससे बकवाद नहीं किया चाहता।"

विजयसिंह फिर आगे बढ़े। मुकुन्ददास ने उन्हें पीछे ठेलकर सीना तान कर कहा—"सरदार मैं हूँ, तुम क्या चाहते हो?"

मुग़ल-सरदार आपे से बाहर हो गया। उसने कहा—"ख़ुदा की क़सम, मैं इतनी गुस्ताख़ी बर्दाश्त नहीं कर सकता। मुझे शक है। क़मरुद्दीन, इन डोलियों के पर्दे उठाकर तलाशी लो।"

मुकुन्ददास और विजयसिंह ने तलवार खींच लीं। दोनों डोलियों के सामने अड़कर खड़े हो गए। मुकुन्ददास ने आगे बढ़कर कहा—"जो आगे बढ़ेगा, दो टुकड़े हो जायगा।"

मुग़लों ने भी तलवारें खींच लीं। सरदार के सब साथी भी तलवार सूत कर युद्ध को तैयार हो गए। महाराजा अजीतसिंह चीते के समान छलाँग मार कर बाहर निकल आए। उन्होंने लात मारकर एक मुग़ल सैनिक को घोड़े से गिरा दिया, और उसी की तलवार छीन दम भर में उसके दो टुकड़े कर दिए।

मुकुन्ददास ने चिल्ला कर कहा—"कुमार! तुम डोलियों की रक्षा पर रहो।" इसके बाद वह उन इने-गिने साथियों को लेकर शत्रुओं पर टूट पड़े। अब गहरी लड़ाई छिड़ गई। मुग़ल बहुत थे। राजपूत तेज़ी से छीजने लगे। पर मुग़लों की लाशों के भी अंबार लग गए। मुग़ल-सेनापति अपने को बचाकर लड़ रहा था। वह स्वयं लड़ता कम था, औरों को अधिक उत्साहित करता था। वह बहुत से चुनीदा सिपाहियों के झुरमुट में खड़ा था।

मुकुन्ददास ने कहा—"हम लोगों को पास-ही-पास रहकर चौमुखी लड़ाई करनी चाहिए। दूर तक नहीं फैलना चाहिए।" इसके बाद उन्होंने सिर उठाकर अपने आदमियों को गिना। फिर कहा—"कुल ११ हैं—६ मेरे साथ रहें, ४ सरदार विजयसिंह के साथ पार्श्व में, और एक कुमार की रक्षा को डोलियों के पास।"

क्षण-भर ही में युद्ध घमासान हो गया। राजपूत बहुत कम थे। बहुत-से सैनिकों के कट चुकने पर भी मुसलमानों ने डोलियों को घेर लिया। कुमार ने चीते की भाँति उछल उछल कर मुग़लों को चीरना शुरू कर दिया। एक तीर उनके कन्धे को छेदता हुआ पार निकल गया। कुमार ने उसकी परवा न कर बर्छा फेंका। वह घोड़े-समेत मुग़ल सरदार को चीरता हुआ धरती में जा घुसा। मुग़ल-सरदार ने घोर चीत्कार किया, और ठंडा हो गया। इसी बीच में एक तीर कुमार के पैरों में घुसकर अटक गया। वह और भी बहुत घाव खा चुके थे, अतः उनका सिर घूमने लगा, और वह

लड़खड़ा गए। एक क्षण में भयानक संकट सामने आने वाला था।

इसी समय 'जय शंकर' का भीषण नाद हुआ; और सैकड़ों लपलपाती तलवारें मुगलों पर पड़ गईं। यह वीरवर दुर्गादास थे, जो किले के चारों तरफ़ के शत्रुओं की देख-भाल में गश्त लगा रहे थे।

थोड़ी देर की भीषण मार-काट के बाद, शत्रु-दल को काट गिराया गया। इस युद्ध में कुमार के पैर में जो एक तीर लगा था उसे उन्होंने खींचकर निकाल डाला था। पैर से बहुत-सा खून निकल गया था, तो भी कुमार डोली के पार्श्व में खड़े तलवार चला रहे थे।

कुमारी ने कुमार के पैरों से रक्त का झरना झरते देखा। वह कुंठित होकर बड़ी देर तक देखती रह गई। अन्त में उससे न रहा गया। उसने मृदु कंठ से कहा—"आपके कन्धे और पैर में बहुत घाव हो गया है, खून भी बहुत-सा निकल गया है, पट्टी बाँध लीजिए, कमज़ोर हो जायँगे।"

कुमार उस वीणा-विनंदित सहानुभूति के वाक्य को सुनकर हँस दिए। उन्होंने तलवार चलाते हुए कहा—"कुमारी, क्षत्रिय-पुत्र ऐसी बातों की चिन्ता नहीं करते। तुम ज़रा सावधान रहो। ऐसा न हो, कोई तीर आकर तुम्हें घायल कर जाय।"

कुमारी से न रहा गया। उसने उसी स्निग्ध स्वर में कहा—"मैं क्या क्षत्रिय-कन्या नहीं।" वह हठात् डोली से निकलकर

कुमार के चरणों में बैठ गई। उसने अपना आँचल फाड़कर पट्टी तैयार की। इसी बीच युद्ध समाप्त हो गया। कुमार हँस कर वहीं बैठ गए। कुमारी ने अपने कोमल हाथों से कुमार के पैर में पट्टी बाँध दी। इसके बाद कुमारी ज्यों ही नीची गर्दन करके उठी, कुमार ने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा—"कुमारी, तुम्हारी इस कृपा का जन्म-भर बदला चुकाने की चेष्टा करूँगा।"

कुमारी कंटकित हो गई। वह चुपचाप डोली में जा बैठी।

५

बदनौर के क़िले में सब लोगों ने विश्राम किया। फिर मंत्रणा-सभा बैठी। निश्चय हुआ कुमार कुछ साथियों सहित जोधपुर में छद्म-वेश में प्रवेश करें।

अँधेरी रात थी, और आकाश में बादल दौड़ रहे थे, जिस समय इस छोटे से दल ने जोधपुर की एक साधारण सराय में प्रवेश किया। वे एक परदेशी सौदागर बनकर गए थे। उन्होंने तुरन्त ही फाटकों पर अधिकार करने की युक्ति सोच ली। रातोंरात वे अपना काम करते रहे।

उषा का अभी उदय नहीं हुआ था। संसार सुख-नींद में सो रहा था, और प्रातःकालीन ठण्डी वायु के थपेड़े आनन्द दे रहे थे। इसी समय दुर्गादास की प्रबल सेना फाटक ढकेलती हुई जोधपुर में घुस आई। समस्त प्रहरी क्षण भर में काट डाले गए।

दुर्ग पर दिन निकलते-निकलते अधिकार हो गया। मुग़लों का एक भी बच्चा जीता न बच सका। शाही खज़ाना सब वहीं रहा। दुर्गादास ने सब पर अधिकार जमाकर, तलवार ऊँची कर जय मरुधर अजीतसिंह महाराज का जय-नाद किया। सहस्रों राजपूतों की कण्ठ-ध्वनि से पर्वत-श्रेणी काँप उठी।

नगर-निवासी आनन्द में उन्मत्त क़िले में जा रहे थे। मारवाड़ आज फिर स्वतन्त्र था।

शेरा भील

१

जिन दिनों औरंगजेब ने मेवाड़ की भूमि को चारों तरफ से घेर रक्खा था, उन दिनों की बात है। सारे राज्य-भर में सन्नाटा छा गया था। गाँव उजाड़ दिए थे। कुएँ पाट दिये गये थे। खेत जला दिए गए थे, और सब प्रजा-जन अपने पशुओं-सहित अरवली की दुर्गम घाटियों में चले गये थे।

मुग़लों को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ रहा था। हुकूमत और घमण्ड से मुग़लों के प्रत्येक सिपाही का मिज़ाज चौथे आसमान पर चढ़ा रहता था। ऐयाशी और रँगीली तबियतदारी उनमें हो ही गई थी। बादशाह के प्रति कुछ उनकी ऐसी ज्यादा श्रद्धा भी न थी, क्योंकि शाही सेना में सिर्फ मुग़ल ही हों, यह बात न थी। मुग़ल, पठान, सैयद, शेख और न जाने कौन-कौन धुनिए-जुलाहे भर गए थे। वे सिर्फ अपनी नौकरी बजाने

को सिपाहीगीरी करते थे। प्रत्येक सिपाही अपने जान-माल की हिफ़ाज़त करने के लिए व्यग्र रहता था, और यथाशक्ति आराम-तलबी चाहता था।

इसके विपरीत राजपूतों में अपने देश के लिए रस था। वे प्राणों को हथेली पर रख रहे थे। वे लड़ते थे अपनी प्रतिष्ठा के लिए, अपनी भूमि के लिये, अपनी जाति के लिए। वे अपने राजा को प्यार करते थे। राजा उनका स्वामी नहीं, मित्र था, इससे राजा के लिए प्राण तक देना उनके लिए परम आनन्द की बात थी।

लूनी-नदी की क्षीण धारा टेढ़ी-तिरछी होकर उन ऊबड़-खाबड़ मैदानों से होती हुई अरवली की उपत्यका में घुस गई थी। उसका जल थोड़ा अवश्य था, परन्तु बहुत स्वच्छ और मीठा था। नदी के उत्तर की ओर सीधा पहाड़ खड़ा था और बड़ा घना जंगल था। उस जंगल में भीलों की बस्तियाँ थीं। भीलों की जीविका जंगल ही से होती थी। शहद, लकड़ी, मोम, पत्ते, टोकरी आदि बेचकर वे काम चलाते थे। समय पाने पर लूट-मार भी करते थे। वे अरवली की तराई में लम्बी लम्बी और अगम्य घाटियों में अपनी बस्तियाँ बसाए रहते थे। वे ऐसे अगम्य स्थल थे कि अजनबी आदमी को एकाएक वहाँ पहुँचना असम्भव ही था। इसीलिये महाराणा ने उनके कुछ गाँवों को जहाँ-तहाँ रहने दिया था। उनसे महाराणा को बहुत सहायता मिलती थी। वे प्रकट में अत्यन्त जंगली भाव से रहते

थे। वे बड़े निर्भय वीर थे। उनके पैने, विषैले बाण का एक हल्का सा घाव भी प्राणांतक होता था। परन्तु वे बाहर से जैसे असभ्य थे, वैसे भीतर से नहीं। वे अपने सरदार के अनन्य भक्त थे। उनमें अपना निजी संगठन था। वे अपने को राणा के क्रीत-दास समझते थे। वे निर्भय होकर वन-पशुओं का शिकार करते थे, खाते थे और फिर दिन दिन भर खेत में लड़ना उनका सबसे ज़रूरी काम था।

वे इस बात की ताक में सदैव रहते थे कि धावा मारें और मुग़ल छावनी को लूट लें। बहुधा वे ऐसा करते भी थे। मुग़ल सरदार उनसे बहुत दुःखी थे। वे उनका कुछ भी न बिगाड़ सकते थे और उनसे वे सदैव चौकन्ने रहते थे। कभी कभी तो वे रात को एकाएक मुग़ल छावनी पर धावा मारते और किसान जैसे खेत काटता है, उसी भांति मार काट करके भाग जाते थे वे इस सफ़ाई से भागते और ऐसी चालाकी से जंगलों में छिप जाते कि मुग़ल सिपाही चेष्टा करके भी उन्हें न ढूँढ़ पाते थे।

२

उनके सरदार की शक्ल भेड़िए के समान थी। सब लोग उसे भेड़िया ही कहते थे। उसमें साधारण बल था। सब दलों के सरदार उसका लोहा मानते थे। उसने युद्ध में सैकड़ों आदमी

मार डाले थे, और सबकी खोपड़ियाँ ला-लाकर खूँटी पर टाँग रक्खी थीं।

सरदी के दिन थे, रात का सुहावना समय। वे आग के चारों तरफ बैठे तम्बाकू पी रहे थे। उनके काले और चमकीले नंगे शरीर आग की लाल रोशनी में चमक रहे थे। एक राजपूत सिपाही ने आकर धरती पर भाला टेककर भील-सरदार का अभिवादन किया। भील सरदार ने खड़े होकर राजपूत से संदेश पूछा। तुरन्त ढोल पीटे गए। और, क्षण-भर में दो हज़ार भील अपने अपने भालों को लेकर आ जुटे।

सैनिक राजपूत ने उच्च स्वर से पुकार कर कहा—

"भील सरदारो! राणा का हुक्म है कि आप लोगों के लिए राज्य की सेवा का सुअवसर आया है। दुश्मन ने देश को चारों ओर से घेर रक्खा है। राणा ने आपकी सेवा चाही है। अपना धर्म पालन करो।"

भीलों के सरदार ने अपने विकराल मुँह को फाड़कर उच्च स्वर से कहा—"राणाजी के लिये हमारा तन-मन हाज़िर है।"

उसी रात्रि में तारों की परछाईं में दो हज़ार भील वीर चुपचाप उस राजपूत सैनिक का अनुसरण कर रहे थे। सबके हाथ में धनुष-बाण थे। वे सब अरवली की चोटियों पर रातों-रात चढ़ गए। उन्होंने अपने मोर्चे जमाए, पत्थरों के बड़े बड़े ढोके एकत्र किये और छिपकर बैठ गए।

३

दोपहर की चमकती धूप में भील-रमणियाँ मूँगे की कंठी कंठ में पहने, भारी भारी घाँघरे का काछा कसे, लूनी के तीर से पानी ला रही थीं। कोई जल में किलोल कर रही थी। लूनी का क्षीण कलेवर उन्हें देख कर कल-कल कर रहा था। एक युवती मिटटी के घड़े को पानी में डाले जल के उसमें घुसने का कौतुक देख रही थी, और हँस रही थी। दो बालिकायें नदी के किनारे चाँदी-सी चमकती बालू में खेल रही थीं। अकस्मात् एक तीर सनसनाता हुआ आया, और बालू में खेलती एक बालिका की अँतड़ियों को चीरता हुआ चला गया। बालिका के मुख से एक अस्फुट ध्वनि निकली, और वह रेत में कुछ देर छट-पटा कर ठंडी हो गई।

नदी किनारे खड़ी भील-बालओं ने आश्चर्य और रोष-भरी दृष्टि से नदी के दूसरे तट की ओर देखा। दो मुग़ल खड़े हँस रहे थे। एक युवती चिल्लाती हुई दौड़कर पेड़ों के झुरमुट में ग़ायब हो गई। गाँव में एक बूढ़ा, रोगी भील था, जो इस समय राणा के रण-निमंत्रण पर न जा सका था। उसका नाम शेरा था। वह अपने विशाल धनुष और तीन चार बाणों के साथ बाहर आया। उसने पेड़ की आड़ में खड़े होकर दूसरे तट पर खड़े एक मुग़ल को लक्ष्य करके तीर फेंका। वह तीर वज्रपात की भाँति मुग़ल सैनिक के हलक़ को चीरता हुआ कंठ में अटक रहा।

सैनिक चीत्कार करके धरती पर गिर पड़ा। नदी-तट की सब स्त्रियाँ अपने घड़े वहीं छोड़कर गाँव भाग आईं।

४

दो युवतियाँ जोर जोर से ढोल बजा रही थीं। शेरा एक वृक्ष की आड़ से बाणों की वर्षा कर रहा था। ५०० मुग़लों ने गाँव घेर रक्खा था। दो तीन किशोर-वयस्क बालक दौड़ दौड़ कर तीर चला रहे थे। स्त्रियाँ बाणों के ढेर शेरा के निकट रख देती थीं। शेरा का बाण अव्यर्थ था। वह चीरता हुआ आर-पार जा रहा था। शेरा के चारों तरफ बाणों का मेह बरस रहा था।

शेरा ने देखा, मुग़ल सैनिकों का रोकना कठिन है। दो चार सिपाही गाँव में आग लगाने का आयोजन कर रहे हैं। उसने स्त्रियों को एकत्र कर बच्चों सहित उन्हें पीछे करके हटना शुरू किया। एक तीर उसकी भुजा में लगा। उसने उसे खींच कर फेंक दिया। गेरू का झरना जैसे नील पर्वत से झरता है, रक्त झरने लगा।

शेरा ने चिल्लाकर कहा—"सब कोई दूसरे जंगल में चले जाओ।" गाँव की झोपड़ियाँ धाँय-धाँय जलने लगीं। शेरा कौशल से बाण मारे जा रहा और पीछे हट रहा था। उसकी वीरता, साहस और धीरज आश्चर्य-चकित करने वाले थे।

५

एक बलिष्ठ भील-बाला तीर की भाँति अरवली की उपत्यकाओं की ओर भागी जा रही थी। उसने एक ऊँचे पेड़ पर चढ़कर अपनी लाल साड़ी को हाथ की लाठी पर ऊँचा किया। कुछ ही क्षण बाद चीटियों के दल की तरह भीलगण धनुष और बाण आगे किए पर्वत-शृंग से उतर रहे थे। स्त्री वृक्ष से उतर कर अपने रक्त वस्त्र को हवा में फहराती आगे आगे दौड़ रही थी, पीछे-पीछे भीलों की चंचल पंक्तियाँ थीं।

गाँव में आकर देखा, गाँव की झोपड़ियाँ धाँय-धाँय जल रही हैं। भील सरदार ने हाथ ऊँचा करके बाघ की तरह चीत्कार किया। चारों तरफ भील वीर बिखर गए। बाणों की वर्षा होने लगी। मुग़ल सैन्य में आर्तनाद मच गया। उनके पैर उखड़ गए। सैंकड़ों ने घोड़े पानी में डाल दिए। उनके रक्त से नदी का जल लाल हो गया। सैंकड़ों मुगल खेत रहे। युद्ध में भील वीर विजयी हुए। युद्ध से निवृत्त होकर सरदार ने शेरा को तलाश किया। वह सैंकड़ों तीरों से छिदा हुआ एक झोपड़ी की आड़ में निजीव पड़ा था।

आज भी उस वीर वृद्ध भील शेरा के गीत, भील-बालिकाएँ जब जल भरने आती हैं, गाती हैं।

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal,
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल